इतिहास के देवता रघुवीर शरण मित्र

'वैश्वीकरण' से स्थूल तात्पर्य है कि सम्पूर्ण विश्व में स्थित मानव जाति का अपने क्षेत्र, जाति, धर्म, संस्कृति तथा राष्ट्र के सीमित दायरे से निकल कर 'विश्वमानव' के रूप में विस्तार। इस रूप में वैश्वीकरण एक राजनैतिक सामाजिक चेतना है। वैश्वीकरण को 'विश्ववाद' भी कहा जा सकता है। इसमें अपनी मातृभूमि की सभी विभिन्नताओं के साथ 'मातृभूमि और धरती माता' के साथ जुड़ाव सम्बन्ध माना गया है। भारतीय संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् को एक आदर्श माना था। विभिन्न भेदा-भेद को त्याग कर सम्पूर्ण मनुष्य जाति परस्पर बंधुभाव रखकर सब के साथ अपनी उन्नति के लिए उद्युक्त हो तो विश्व एक परिवार की तरह होगा। वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के समर्थक भी यही कहते हैं कि वैज्ञानिक प्रगति और सूचना क्रांति के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण विश्व एक 'ग्राम' बन गया है। विश्व में रहनेवाला कोई व्यक्ति, कोई समाज और कोई देश अब पृथक नहीं रह सकता। विश्व के एक कोने में घटित छोटी-से-छोटी घटना का असर विश्व के दूसरे कोने में बैठे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पर होता है। इसीलिए विश्व की एक साझी जीवनचर्या का आरंभ वर्तमान समय की पहचान है। एक तरह से मानवता का विस्तार वैश्वीकरण है।

'वैश्वीकरण' का आदर्श रूप भले ही मोहक हो, लेकिन उसका यथार्थ रूप वह नहीं है। आज वैश्वीकरण 'नवपूँजीवाद' का मोहक नामकरण मात्र है। इसीलिए यह वैश्वीकरण मानवता का विस्तार नहीं, नवपूँजीवादी साम्राज्यवाद है। वैश्वीकरण से तात्पर्य आर्थिक उदारीकरण तथा निजीकरण है। आर्थिक सुधार, सांस्कृतिक पुनरुत्थान, उदारीकरण आदि ऐसे सकारात्मक शब्द हैं, जो विश्व के नये विधान की पैरवी में बार-बार इस्तेमाल हो रहे हैं। इन शब्दों से लगातार यह अहसास दिलाया जाता है कि वैश्वीकरण एक जरूरी आर्थिक उदारीकरण से सीधा तात्पर्य है 'मुक्त बाजार' मुक्त अर्थव्यवस्था, स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था। यहाँ स्वतंत्रता का अर्थ बाजार की स्वतंत्रता से है। बाजार पर अंकुश जितने कम होंगे, आर्थिक निर्णय उतने ही बेहतर होंगे, क्योंकि स्वतंत्रता हर व्यक्ति को यह अवसर देती है कि वह अपने सर्वोत्तम हित में

अ रिका तथा अन्य देशों ने
अन्य देशों को भी लगता है
सम्पन्नता प्राप्त की जा सक

विश्व बैंक और
उदारीकरण कार्यक्रमों में
पर बल दिया गया है। स्थि
कि सरकार अपना राजक
समायोजन में कहा गया है
उद्योगों के मामले में सरका
तथा विदेशी निवेश के लिए
क्षेत्रों को घटाकर निजी क्षेत्र
सीधा अर्थ यह हुआ कि
'पूँजीपतियों' के निर्देश के
को 'बाजारीकरण' के रूप में
में मानवता का विस्तार नहीं
विस्तार के रूप में ही देख
वैश्वीकरण पश्चिमी देशों
साम्राजीकरण की नीति है। अ
हेनरी किसिंगर ने अपने एक
''भूमंडलीकरण वस्तुतः अमे
यह स्वाभाविक ही है कि
उपलब्धियों को देखते हुए
अकूत धन अर्जित किया है,
प्रौद्योगिकी विकसित की है
एवं सेवाओं के लिए बाजार
लगातार बढ़ती वास्तविक
उत्पादकता, मुद्रास्फीती की
निरन्तर आर्थिक संमृद्धि की
भूमंडलीकरण का पिछला दौ
प्रकार वर्तमान दौर के लिए अ
को अमरीकी विचारों, मूल्यों
पड़ेगा, उसके सामने कोई अ

र्राष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा
रीकरण और ढाँचागत समायोजन
करण के चरण में सलाह दी गयी है
षिय घाटा कम करें। ढाँचागत
अर्थव्यवस्था का खुलापन देशी
नियंत्रणों को समाप्त किया जाए
रवाजा खोला जाए। सार्वजनिक
का दायरा बढ़ाया जाए। इसका
ार्थिक क्षेत्र' सरकार की अपेक्षा
ुसार चलें। इस तरह वैश्वीकरण
ी देखा जा सकता है। वैश्वीकरण
ंजी-विशेषकर पश्चिमी पूँजी-का
जा सकता है। इसीलिए आज
वशेषकर अमेरिका-के आर्थिक
ारिका के एक पूर्व विदेश मंत्री डॉ.
ाख्यान में स्पष्ट रूप में कहा था-
की दबदबे का ही पर्यायवाची है।
दुनिया के देश अमेरिका की
सका अनुसरण करें। अमेरिका ने
ी की उपलब्धता बढ़ाई है, नवीन
ौर अनगिनत प्रकार की वस्तुओं
ाया है। फलत: वह पूर्ण रोजगार,
मजदूरी, उत्तरोत्तर वर्धमान
म्नदर, अधिकाधिक

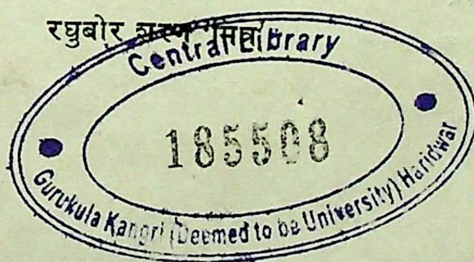
इतिहास के देवता

(अँधेरे से उजाले में लाने वाले उज्ज्वल ऐतिहासिक चरित्र)

(उत्तर प्रदेश शिक्षा परिषद् द्वारा हाई स्कूल परीक्षाओं के लिए सप्लीमेंटरी रीडिंग में स्वीकृत पुस्तक)

लेखक

रघुबीर शरण मित्र

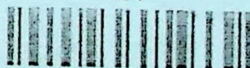


प्रकाशक

भारत भारती प्रकाशन,

वैस्टर्न कचहरी रोड,

मेरठ ।



प्रकाशक :

भारत भारती प्रकाशन,

वैस्टर्न कचहरी रोड,

मेरठ।

फोन—२८४८ तार—पुस्तक

दसम् संस्करण

१९६५

मूल्य रु० १.९२

मुद्रक :

प्रभात प्रेस, मेरठ।

हे इतिहास के देवताओ ! तुम्हार चरणों से धरा धन्य है। तुम हुए, हो, और रहोगे। तुम्हारा इतिहास अमर है। तुम्हारे आदर्श चरित्र शाश्वत सत्यों की तरह ज्योतिवन्त हैं। तुम्हारा जीवन-दर्शन अँधेरे को भी उजाला देता है।

आओ, उन युगपुरुषों की आरती उतारें जो सब के शिव के लिए हुए हैं, और रहेंगे। इतिहास के अमर देवताओं की पूजा के हेतु उनके ही जीवन चरित्र तुम्हारे लिये लाया हूँ। प्रस्तुत पुस्तक में उन महापरुषों के चरित्र हैं जो हमें प्रकाश दिखाते रहे।

मनुष्य के लिये मार्ग वही है जिस पर महापुरुष चले हैं। जो जनता का नेतृत्व कर गये हैं, वे मार्ग बना गये हैं जिस मार्ग पर हमें चलना चाहिये। उनके जीवन से जन-जन को प्राण मिले।

इतिहास घटनाओं से नहीं बनता, अपितु विभूतियों से बनता है। इतिहास में जो प्रधान रूप दिखाई देता है वह उन युगपुरुषों का चरित्र है जो ऐतिहासिक महत्व के कार्य कर गये हैं।

भारतवर्ष महान् देश है, वह महान् इसलिये है कि उसमें ऐसे-ऐसे महापुरुष हुए हैं जिनके चरणों पर संसार का सारा ऐश्वर्य न्यौछावर किया जा सकता है। हमारे देश में उन देवताओं के चरण रहे हैं जिनसे देश बनते हैं, जिनसे इतिहास बनाता है, जिनसे संसार का कल्याण होता है।

हमारे देश की यह विशेषता रही है कि उसके पास आत्म-बल सदैव रहा है। आध्यात्मिकता का आधार जीवन के लिये सबसे बड़ा आधार है और मुझे यह कहने में गौरव है कि भारत के पास आध्यात्मिकता का अक्षय कोष है। उसके आँगन में दिव्य आध्यात्मिक पुरुष रहे हैं और हैं।

हमारे यहाँ आर्य ऋषि भी हैं, हमारे देश में महान् नेता भी हैं, हमारे हिन्दुस्तान में तेजस्वी विद्वान् भी हैं, हमारे भारत में महामानव और महाकवि भी हैं, हमारी भूमि में वीर भी हैं, यही क्या इस पुण्य भूमि पर ईश्वरीय गुणों से युक्त अवतार भी हुए हैं।

इतिहास में ऐसे अनेक महापुरुष हैं, जिनका उज्ज्वल चरित्र धरती पर चाँद सूरज की तरह चमक रहा है गगन में दो प्रहरी हैं तो धरती पर भी ऐसे महापुरुष ज्योतिदान कर रहे हैं जो इतिहास के उज्ज्वल रत्न हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के युग से लेकर महात्मा गाँधी के युग तक के उन विशेष चरित्रों के दर्शन मैं आपको करा रहा हूँ जो समय के प्रतीक कहे जा सकते हैं, अथवा युगप्रवर्तक हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, चाणक्य, शंकराचार्य, तुलसी, प्रताप, शिवाजी, झाँसी की रानी, लोकमान्य तिलक, दयानन्द, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मदनमोहन मालवीय, महात्मा गाँधी, अरविन्द, सरदार पटेल, देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, मौलाना आजाद, सरोजिनी नायडू, चन्द्रशेखर आजाद, राधाकृष्णन और विनोबा भावे आदि के चरित्र भारतीय इतिहास के उज्ज्जल चरित्र हैं।

इतिहास के देवता में उज्ज्वल चरित्रों की झाँकियाँ हैं। इन चरित्रों के माध्यम से मैं आपको नई चेतना देना चाहता हूँ। आप में धार्मिक भावनायें जागें, आपका सामाजिक उत्थान हो, आप में राजनीतिक जागृति आये, आप वीर बनें, आप में देशभक्ति और अपनी सस्कृति की भावानायें पनपें, आध्यात्मिक विस्तार हो, इसी उद्देश्य से मैं आपको कहानियाँ सुना रहा हूँ।

आप इन कहानियों को सुन कर स्फूर्ति का अनुभव करेंगे, आप में नया जीवन आयेगा, आप मनुष्य से महात्मा बन सकते हैं, सिद्ध और अवतार बन सकते हैं, आप में गुणों का कोष आ जायेगा, आप धीर वीर और चरित्रवान कहलायेंगे।

आराधक से आराध्य बनाना ही तो आराधना का उद्देश्य है। आइये, हम सब एक स्वर से इतिहास के देवताओं पर अपनी भावना के फल चढ़ायें और मानवता के दीपक संसार की सब से ऊँची चोटी पर धर दें।

—रघुवीर शरण 'मित्र'

क्रम

इतिहास के देवता

पृष्ठ



मर्यादा पुरुषोत्तम राम

वह दिखाई नहीं देता पर हर प्राणी में है, उसका न आदि है न अन्त, वह बिना पैरों के चलता है, बिना कानों के सुनता है, उसका मुँह नहीं है पर वह सब रसों का स्वाद लेता है, वह वाणीविहीन है पर बहुत बड़ा वक्ता है, उसके हाथ नहीं पर वह सब के काम करता है।

क्या नहीं जानते वह कौन है ! वह एक में सब और सब में एक (All in one and one in all) है। वह मुझ में है, तुम में है और जड़ चेतन सब में है। वह जब निराकार होता है तो सब में रहता है और साकार होकर सब को आपत्ति से छुड़ाता है तथा युग-युगान्तरों तक सृष्टि उस व्यष्टि का नाम रटती रहती है।

राम नाम भी एक ऐसा ही नाम है जिसे हम रटते हैं, श्रद्धा, भक्ति और विश्वास से हम जिसकी पूजा करते हैं।

पूजा इसलिए करते हैं कि वह हमें इस लोक में सुख और परलोक में परम सुख देगा, किन्तु हम समझे नहीं। वह ऐसी पूजा भी कर सकते हैं कि

राम जैसे काम करके राम बन जायें। राम जैसे आदर्शों को अपना कर अमर हो जायें।

अमर होना चाहते हो तो राम बनो, राम बनना चाहते हो तो राजा के घर जन्म लेकर ऋषियों के साथ रहो, राज सिंहासन पर बैठने के साथ-साथ बन बन की खाक भी छानो, सुख भोगने के साथ साथ दुःखों का गरल पीना भी सीखो।

राम केवल आराध्य ही नहीं, आदर्शों के पालक भी हैं। राम का चरित्र जीवन की प्रत्येक दशा में सन्देश है, उनकी मर्यादा महान् है, उनके आदर्श अमर हैं, उनकी सुन्दरता शाश्वत है।

आओ, ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र पर एक दृष्टि डालें, शब्दों के निबन्ध की माला से अपने राम की अर्चना करें।

धरा जब विपत्तियों में, 'त्राहि त्राहि' पुकारती है, सत्य जब संकट में होता है, मनुष्यता जब अत्याचारों से सताई जाती है, नागरिक जब अपने कर्त्तव्यों को भूल बैठता है, राक्षस जब मनमानी करते हैं, काम, क्रोध, मद, लोभ और द्वेष जब पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं, आपस में प्रेम और शान्ति जब नहीं रहती, असहाय जब सहायता के लिये चिल्लाता है, तब कोई अपने चरित्र के प्रकाश से अन्धकार दूर कर संसार में सुख और शान्ति स्थापित करता है। उसका जीवन सबको उजाला देता है। जैसे तपता हुआ सूर्य सबको प्रकाश देता है, उसकी किरणें महलों पर भी पड़ती हैं और झोंपड़ियों पर भी, ऐसे ही अवतार का उजाला सब ओर रहता है।

हमारे देश में जब जब संकट आये तब तब परमात्मा की शक्ति अवतीर्ण हुई। प्रत्येक युग में प्रायः अवतार के दर्शन हुए हैं। त्रेता में जब देवताओं को घोर कष्टों ने घेरा तो वे परमात्मा को स्मरण कर 'त्राहि त्राहि' करने लगे। भगवान् ने दुखियों की पुकार सुनी, उन्होंने संसार को राम रूप में दर्शन दिए।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जन्म महापराक्रमी, सत्यवादी, वचनपालक राजा दशरथ के यहाँ राजधानी अयोध्या नगरी में हुआ। इनकी माता का नाम कौशल्या था। राम का बचपन बड़ा मनोहर और आदर्श रहा है। वे अपने सब भाइयों और साथी बालकों से बड़ा प्रेम करते थे। कोई भी बालक उनसे नाराज नहीं होता था। वे अपने स्वभाव से सबको अपना बना लेते थे। वे सब बालकों के साथ बड़े अच्छे अच्छे खेल खेलते थे। खेल ही खेल में वे सबको जीवन के उपयोगी बहुत से खेल सिखा देते थे।

उन्होंने बचपन में सैनिक शिक्षा ली, राजनीतिक विद्या सीखी, धार्मिक ज्ञान लिया, और भी जितने ज्ञान थे सब उन्होंने थोड़े ही समय में सीख लिए। वे गुरु का बहुत आदर करते थे, उनकी आज्ञा में रहते थे, माता-पिता की आज्ञा पालन करना उनका धर्म था, मर्यादा का निर्वाह करना उनका ध्येय था।

राम थोड़े ही समय में वीर, यशस्वी एवं निपुण हो गये। वे आदर्श जीवन पथ पर आगे बढ़ते चले। ऋषियों की राक्षसों से रक्षा करने के लिए उन्होंने बाल्य काल में ही धनुष बाण संभाल लिया। राक्षस ऋषियों को सताते थे। यज्ञों में बाधा डालते थे, उन्हे रहने नहीं देते थे, उनके आसन जला डालते थे। ऋषि विश्वामित्र अपनी रक्षा के लिये राम और उनके छोटे भाई लक्ष्मण को ले गये। राम और लक्ष्मण ने ऋषियों की रक्षा की, ताड़का नाम की भयङ्कर राक्षसी को अपने धनुष बाण से बाल्यकाल में ही पल भर में मार गिरया।

इस प्रकार बाल्यकाल में ही बड़े बड़े काम कर राम सबके हृदय में बैठ गये। राम ने अपने पराक्रम से राजा जनक के यहां सीता के स्वयंवर में भगवान् शङ्कर का कठोर धनुष तोड़ शक्ति सीता से विवाह किया। जब राम

सबके प्रिय बन गये तथा उनके पिता दशरथ बूढ़ होने को आये तो राजा दशरथ ने जनता के प्यारे राम को अयोध्या का राजा बनाने की घोषणा की।

पर जिस दिन हृदय सम्राट् राम का राजतिलक होने वाला था उस से पहिले दिन देवी सरस्वती ने रानी कैकेयी की दासी मन्थरा की मति फेर दी, मन्थरा ने राम की विमाता कैकेयी को बहकाया। कैकेयी जो राम को अपने पुत्र भरत से भी अधिक प्यार करती थी बहकाने से आसनपाटी लेकर पड़ गई। जब राजा दशरथ उसके महल में आये और उससे उदास होने का कारण पूछा तो कैकेयी ने कहा कि आपने एक बार मुझे दो वर देने को कहा था वे अभी तक नहीं दिये। दशरथ ने हँस कर कहा—'वर मांग लो, हम देंगे।'

कैकेयी ने एक वर में राम को वनवास और दूसरे वर में भरत को राजगद्दी मांगी। भरत उस समय अपने नाना के यहाँ गये हुए थे, अयोध्या में नहीं थे। राजा दशरथ ने जब राम के बनवास की बात सुनी तो मूर्छित हो गये। इतने में राम भी वहाँ आ पहुँचे और पिता को मूर्छित देख कैकेयी माता से पूछा—"क्या बात हुई माँ!"

कैकेयी ने कहा—"तुम्हारे पिता ने मुझे वचन दिये थे कि दो वरदान माँग लो। मैंने एक वर में भरत को राजगद्दी और दूसरे में तुम्हारे लिये बनवास माँग लिया।" राम ने दशरथ को होश में लाकर कहा—"पिता जी! आप दुःख क्यों मानते हैं? यह तो प्रसन्नता की बात है, भैया भरत राज करेंगे, मैं बन में रह कर जीवन को भावना और बल से ऊँचा उठाऊँगा।

वहाँ रहकर मैं राक्षसों से देश की रक्षा करूँगा, माता जी को प्रसन्नता होगी, आपके वचन पूरे होंगे, भैया भरत राज्य करके राष्ट्र की सेवा करेंगे, और मैं बन में रहकर ऋषियों का सत्संग पाऊँगा, धर्म का आदर्श रखूँगा।'

इस प्रकार तरह तरह की मधुर और कल्याणकारी बातें कह राम माता पिता को सान्त्वना देने लगे, तथा फिर अन्त में पिता के वचनों और माता की आज्ञा पालन करने बनों में चले गये। राम के साथ उनके अनुज यशस्वी यती लक्ष्मण तथा सती पत्नी सीता भी गईं। राम के बन जाने से सारी जनता अनाथ जैसी हो गई, सारी अयोध्या विलाप करने लगी। अपने प्यारे राम के वियोग में प्रकृति का कण कण विलाप करने लगा। राजधानी अयोध्या सूनी हो गई। राजा दशरथ ने राम के वियोग मे तड़प तड़प कर इस प्रकार प्राण दे दिये जिस प्रकार मछली जल के बिना तड़प तड़प मर जाती है।

जब भरत अपने नाना के यहाँ से लौटकर अयोध्या आये तो यह दुःख भरी कहानी सुनकर तड़प उठे। जब उन्हें पता लगा कि इसका कारण मैं हूँ तो वे 'हे राम ? हे राम' कहते हुए विलाप करने लगे और राम को लेने सारी अयोध्या नगरी चल पड़ी। वन में, भरत राम के चरणों में गिर, बच्चों की तरह बिलखने लगे। आँसुओं से भगवान् राम के चरण धोते हुए वे बार बार कहने लगे—'आप अयोध्या का राज्य करने की कृपा करें। मैं आपके स्थान पर बन जाऊँगा। मुझे बन जाने की आज्ञा दें।'

भरत को प्रेम से हृदय से चिपटा राम की आँखों से गंगा बहाने लगे। प्रेम का ऐसा अद्भुत संगम देखकर कण-कण से मर्यादा पुरुषोत्तम राम और

महात्मा भरत की जय जय गूँजने लगी। राम ने भैया भरत के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"भैया! तुम मेरा आज्ञा से अयोध्या वापिस जाओ तथा मेरे प्रतिनिधि बनकर जनता की सेवा करो। अयोध्या का राज्य संभालो, यह तुम्हें बड़े भाई की आज्ञा है। मैं माता की आज्ञा और पिता के वचनों का पालन करके वन से लौटूँगा।"

राम की आज्ञा भरत कैसे टाल सकते थे। वे उनकी खड़ाऊँ लेकर जनता की सेवार्थ राजकार्य करने अयोध्या आ गये, पादुकायें आसन पर रख वे जनसेवा में लग गये। महात्मा भरत श्रद्धा, सेवा, सच्चाई, त्याग, तपस्या एवं कर्मण्यता से जन जन में अमर हो गये।

उधर राम अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ पापों से धरा को मुक्त करते हुए आगे बढ़े, अपने भक्तों को दर्शन देते हुए भक्तवत्सल भगवान ने अपने जन का गौरव बढ़ाया। 'अहिल्या' का उद्धार कर उन्होंने पत्थर को चेतना दी। 'भिलनी के बेर' खाकर वे सब में समान प्रेम के प्रत्यक्ष प्रमाण बने।

लोक कल्याणार्थ बन में अनेकों चरित्र करते हुये राम पर बड़े बड़े संकट आये, पर उन्होंने किसी भी आपत्ति में धैर्य और साहस नहीं छोड़ा। महाबल-धारी लंकापति रावण वन में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की पत्नी सीता का चुरा कर ले गया।

राम ने रावण को कारा से सीता को छुड़ाने के लिये बन में सेना संगठित की। महाबली सुग्रीव को अपना मित्र बनाया, हनुमान, अंगद, जामवन्त, नल, नील आदि बड़े बड़े महावीर राम के सहायक बने। राम ने बुद्धिबल तथा सत्य से सबको अपना बना लिया। सीता का पता लगाकर

उन्होंने अपने दूतों द्वारा रावण को बहुत समझाया कि सीता को वापिस कर दे और राम की शरण आ जाये, पर घमन्डी रावण ने एक न मानी, उसने सीता को मुक्त नहीं किया। रावण के पास बड़े-बड़े शस्त्र और बड़े-बड़े बलधारी योद्धा थे, उसे अपनी शक्ति पर बड़ा अहंकार था।

राम ने राजनीति, रणकुशलता तथा न्याय से रावण से संग्राम किया। बड़ा भयकर युद्ध हुआ, बड़े बड़े वीर उसमें मारे गये। धन जन की हानि हुई। लंकापति ने लड़ते लड़ते अपनी सारी सेना, सारी शक्ति तथा सारी निधि युद्ध में खपा दी, पर अपने जीते जी भगवान् राम से हार नही मानी, अपनी एक बहिन के नाक कटने के बदले वह स्वाहा हो गया पर पैर पीछे नहीं हटाया। धन्य है वह राम-युग जिसमें रावण जैसा राक्षस भी इतना महापंडित था।

राम की शक्ति के सामने रावण अपनी सारी सेना तथा बड़े बड़े वीर भाइयों और पुत्रों सहित मारा गया। विजयी राम लंका का राज्य भक्त विभीषण को सौंप, सीता को कारा से छुड़ा देवताओं को प्रसन्न कर चौदह वर्ष बाद अयोध्या वापिस आये।

अयोध्या आकर राम जन-सेवा एवं राष्ट्र-कार्य करने लगे। उसके राज्य में किसी तरह का ताप नहीं था। सुख की बाँसुरी बजती थी। सत्य, प्रेम और धर्म को वीणा के स्वर थे। मनुष्यता की सुगन्ध चारों ओर उड़ती थी। देश की राजनीतिक, आर्थिक, साहित्य और मानसिक मधुरता से संसार सौरभमय बन गया। दैहिक, दैविक, भौतिक किसी भी प्रकार के दुःख का नाम तक न था। राम के चरित्र में व्यवहार के समस्त स्वरूप आदर्शमय थे। राम के जीवन से हमें जीवन की हर शिक्षा मिलती है। नागरिकता, राष्ट्रीयता,

मनुष्यता, मर्यादा सभी कुछ हम राम के चरित्र में पाते हैं। राम के जीवन को अपना आदर्श बना कर हम अमर हो सकते हैं। चलो! राम के चरित्र चिह्नों पर चलें!

राम का चरित्र सर्वगुणसम्पन्न है। राम के रूप में ब्रह्म के दर्शन हैं। राम के नाम में मुक्ति है। राम के राज्य में किसी तरह का ताप नहीं। राम के तत्वों में अमर सत्य है। चलो, इन सत्यों को अपनायें और बनें!

राम-राज्य के लिए राम के चरित्र की आवश्यता है।



भगवान् कृष्ण

अग्नि जिसे जला नहीं सकती, काल जिसे खा नहीं सकता, शस्त्र जिसे काटने में असमर्थ है, जल से जो गलता नहीं और हवा जिसे सुखा न पाये, वह अमर है।

धरती पर अमर पुरुष हुए हैं और होते रहेंगे। तुम भी ऐसे अछेद्य, अक्लेद्य और अशोष्य बनना चाहते हो तो उनके चरित्र पर चलो जो चले गये पर तुम्हारे लिए अपना नाम और काम छोड़ गये हैं, जो नित्य, सर्वव्यापक अचल और स्थिर थे, जो अधिकारी और सनातन हैं, जो दूसरे के लिए जिये और दूसरों के लिए मर कर अमर हो गए।

भगवान् कृष्ण का चरित्र चाँद और सूरज की तरह हमें आज भी गीता के शब्द दीपों से ज्योति देता है। उनका इतिहास आज भी हमारे ऊपर सुनहरी किरणें बिखेरता है। इनकी गीता का अमृत पराजित के लिए प्राण और अजेय

के लिये मार्गदर्शन है, हजारों वर्ष बीत गये पर कृष्ण कृष्ण रटते हुए प्राणियों के मुँह नहीं सूखे. मानो कृष्ण आज भी हमारे सामने हैं और हम उन्हें पुकार रहे हैं।

हर वर्ष भादों कृष्ण पक्ष की अष्ठमी को हम भगवान् कृष्ण का जन्म-दिन मनाते हैं, व्रत रखकर, आरती उतार कर, फूल चढ़ा, प्रसाद बाँट हम अपने अवतार की पूजा करते हैं इसलिए कि वह हमारी पूजा की सफलता का दिन है।

आज बन्दी माता पिता की पुकार से अनन्त शक्ति धरा पर प्रकट हुई थी, जनता प्रसन्नता से पुलक उठी, घर घर मंगल गीत गाये जाने लगे, मन्दिर मन्दिर में दीपक जल उठे।

क्योंकि पृथ्वी माता की गोद में वह आज आया था जिसने धरा को दुःखों से छुड़ाया, जिसने अत्याचारों से प्राणियों को मुक्त किया, जिसकें बचपन जवानी और बुढ़ापे के हर श्वांस की कहानी गुणों से भरी पड़ी है।

आओ, हम कृष्ण की झाँकी के साथ साथ उनकी कहानी भी आँखों से पढें, उनके जीवन के पन्नों पर उनकी तसवीरें देखें।

यह है कंस का बन्दीगृह इसमें वसुदेव और देवकी बन्दी हैं। देखो, इन दोनों पर कंस कैसे अत्याचार कर रहा है!

"ठहर जा! अब मैं आ गया हूँ," यह किस की आवाज है! कृष्ण की। "डरो मत माँ! रोओ मत पिता! मैं आ गया हूँ, अब कंस तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अब तुम सताये नहीं जाओगे।"

नहीं, नहीं वह मेरे और बच्चों की तरह तुम्हें भी मार डालेगा। इस समय सब पहरे दार सो गये हैं, चलो मेरे लाल मैं तुम्हें अपने सखा नन्द बाबा के यहाँ पहुँचा आऊं।"

और फिर वसुदेव भयानक वर्षा में कृष्ण को छाज में छिपा कंस की जेल से वृन्दावन के लिए चल पड़े। ईश्वर की कृपा से उस समय पहरेदार बेहोश सो गये और जेल के दरवाजे खुल गये।

कराल शब्द करती हुई कालिन्दी वेग से बह रही थी, लहरों में इतनी तेजी थी मानों वे आकाश को डुबाना चाहती हैं। पर जैसे-तैसे वसुदेव शिशु कृष्ण को यमुना पार ले आये।

वे दूसरे किनारे पर आ पहुँचे और फिर रात के घने अन्धेरे में वे बरसात और आँखों की बरसात से भीगते हुए गोकुल में अपने सखा नन्द बाबा के घर पहुँचे।

वसुदेव ने द्वार खटखटाया, नन्द बाबा बाहर आये, तूफान की छाती चीर कर आये हुए अपने सखा को छाती से चिपका लिया।

वसुदेव ने भीगी आँखों से नन्द बाबा को एकटक देखते हुए कहा—"यह बालक मैं आपके सुपुर्द कर रहा हूँ, आप ही इसके पिता हैं और भाभी यशोदा इसकी माँ! कंस से इस बालक के प्राण बचाने के लिए मैं इसे आप को सौंपता हूँ। और जब सुबह कारागार में कंस हमसे बच्चे के लिए पूछेगा तो हम कुछ नहीं बतायेंगे और वह पिशाच हमें सदा के लिए सुख की नींद सुला देगा।"

कहते हुए नन्द बाबा ने शिशु कृष्ण को यशोदा के पास सुला दिया और लड़की वसुदेव ने गोद में ले ली, और उसी आंधी, पानी, तूफान में वे फिर वापिस बन्दीगृह में आ गये।

सवेरा हुआ, कंस आया और उसने उस कोमल सी कन्या को पत्थर पर पटक कर दे मारा।

जैसे ही कन्या को पत्थर पर पटका वैसे आकाश में बिजली सी चमकी और आकाशवाणी हुई—तेरे पापों का घड़ा भर चुका है, मुझे मार कर तो तूने व्यर्थ ही रक्त में हाथ रंगे, तुझे मारने वाला तो गोकुल पहुँच चुका है।"

कंस चोट खाये हुए नाग की तरह फुंकारता रह गया और उधर गोकुल में कृष्ण बाल-लीला करने लगे। उन्होंने प्रेम की वह बांसुरी बजाई कि गोकुल के सारे बालक उनके सखा हो गये। जब व्रजवासी उनसे अपार प्रेम करने लगे, मानो कृष्ण यशोदा का ही पुत्र नहीं सारी व्रज-ललनाओं की आत्मा हैं। कन्हैया की अद्भुत छटा पर सारा व्रज फूल पर भौरे की तरह मंडराता था।

पर कृष्ण संसार को केवल प्रेम का पाठ पढ़ाने के लिए नहीं आये थे, वे व्यक्त थे पर उसके हृदय में अव्यक्त घुला हुआ था। वे सगुण भी थे और निर्गुण भी। उन्होंने सगुण होकर गोपियों को मोह लिया और निर्गुण होकर वे कण-कण में रमे हुए हैं।

जैसे ही कन्हैया जरा बड़े हुए वैसे ही उन्होंने अत्याचारों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया।

जब वे दूध ही पीते थे तभी उन्होंने कंस के द्वारा अपने मारने को भेजी हुई राक्षसी पूतना के स्तनों में लगे हुए विष को चूसा और छाती पीते-पीते ही पूतना के प्राण पी गये। और भी शकटासुर, तृणावर्त तथा बकासुर जैसे बड़े-बड़े राक्षसों का बचपन में ही संहार किया।

जब तक वे गोकुल में रहे तब तक वे गोकुलवासियों की हर प्रकार से रक्षा करते रहे। उन्होंने गोवर्धन पर्वत उठाकर इन्द्र के भयानक प्रकोप से गोकुलवासियों की रक्षा की, बालक्रीड़ा के साथ-साथ वे अंगारों से खेले।

कालीदह में कूद कर कृष्ण ने कंस के सहयोगी भयानक नाग को नथ

डाला और इस प्रकार जय पर जय करते हुए वे गोकुल के हृदय-सम्राट बन गये। कालिया जैसे कितने ही दैत्यों का संहार कर उन्हेंने कंस तक को कंपा दिया।

कृष्ण की गतिविधि देखकर कंस ने उन्हें यज्ञ में शामिल होने के बहाने से मथुरा बुलाया। वहाँ उसने बड़े-बड़े पहलवानों से कृष्ण को मरवाना चाहा पर कृष्ण ने उलटा उन सबको मार डाला। अन्त में कृष्ण ने कंस को सबसे ऊँचे मचान से खींच कर मार डाला।

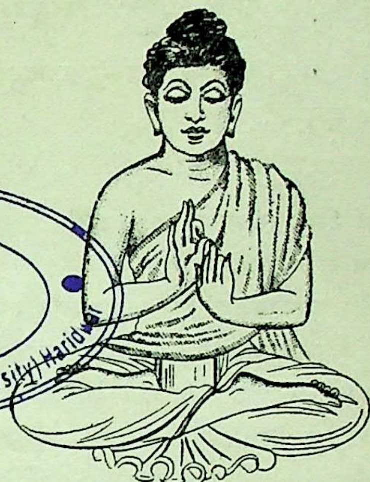
कंस को मार कर कृष्ण ने मातृभूमि का उद्धार किया और फिर सारे संसार में शान्ति और संगठन के लिये यत्नशील हुए। किन्तु हाय! वह रूप का धनी बांसुरी से मोहने वाला, जगत पर छा गया, फिर भी उसके रोके से महाभारत न रुका। इसे हम 'होनी बड़ी बलवान होती है' यही सोचकर संतोष कर सकते हैं। हार कर कृष्ण को भी पांडवों की ओर से उस महायुद्ध में कूदना पड़ा, जिसमें जलकर हमारा देश शताब्दियों के लिये राख हो गया। पर इस राख में भी कृष्ण का उज्ज्वल चरित्र, कूटनीति, अद्भुत पौरुष और अपार प्रेम सबको संदेश देता है। अंधकार की उस वीभत्स राशि पर कृष्ण की वाणी गीता के रूप में आज भी जगमगा रही है। काली चादर पर कृष्ण ने प्रकाश की वह अमिट रेखा खींच दी है जो अँधेरे को दिवाली के दीपों की तरह सदा ज्योति देती रहेगी।

कृष्ण की गीता जीवन की गति है। जन्म, मरण, धर्म, कर्म और ज्ञान का ऐसा उजाला है जिससे सूरज भी प्रकाश ले सकता है। जान पड़ता है सूरज ने अपना जीवन गीता के आदर्शों पर ढाल दिया है, तभी तो वह तप कर अदृष्ट कोदृष्यवन्त करता है, स्वयं जलता है और सृष्टि भर की निष्काम सेवा करता है।

यदि विज्ञान ने किसी दिन आकाश के अन्तर से कृष्ण के वे शब्द खोज निकाले जो उन्होंने अपने जीवन में कहे हैं तो फिर वही दिन ईश्वर के प्रत्यक्ष होने का दिन होगा और हम फिर निराकार के साकार दर्शन कर लेंगे।

तुम भी कृष्ण बन सकते हो पर तभी जब निष्काम कर्म करो। कृष्ण बनाना चाहते हो तो सूरज की तरह तपो, गीता की तरह बोलो और गुलाब के फूलों की तरह खिलो।





गौतम बुद्ध

वह आया और चला गया, पर वह हमें ऐसा दीपक दे गया जो कभी नहीं बुझेगा। वह दीपक उसकी वाणी का दीपक है, जिसमें उसके स्नेह के तेल का प्रकाश है, जिसे उसके श्वास द्वार-द्वार पर लिये फिरते रहे, जिसे उसने अपने तप की अग्नि से जलाया।

आओ हम सुनें उसने क्या कहा, आओ हम देखें उसने क्या किया, आओ हम उसके प्रकाश में घुल मिल जायें।

"तुम स्वयम् अपने लिये दीपक बनो! दूसरों की रोशनी के मुहताज न रहो! अन्य बाहरी स्थान से रक्षा की आशा मत करो! केवल सत्य को अपना मार्ग दर्शक बनाओ और उसकी शरण में रहो!"

यह है गौतम बुद्ध की वाणी जो धरती के फूलों पर और आकाश के चाँद तारों पर ज्योति से लिखी हुई है।

अवतार, महापुरुष अथवा महात्मा धरती पर तभी आते हैं जब अनीति

बढ़ जाती है, जब मनुष्यता मुँह ढककर रोती है, जब अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं।

जब प्राणी बेज़बान होकर 'त्राहि-त्राहि' पुकारने लगता है तब कोई न कोई ईश्वर स्वरूप आकार उसका त्राण करता है। भगवान बुद्ध तब आये जब यज्ञों में बिचारे बेज़बान पशुओं की बलि दी जाती थी, जब धर्म के नाम पर अधर्म का बोलबाला था, जब अपने सुख के लिये दूसरों को कत्ल किया जाता था, जब मनुष्य अन्न न खाकर मांस से अपनी भूख मिटाता था, जब इन्सान को पानी की नहीं खून की प्यास थी, जब इन्सान को इन्सान नजर नहीं आता था।

वह ऐसा काला काल होने लगा था कि अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए धार्मिक हिंसा होती थी, जब हिंसा नृत्य करती थी, जब पथ खो गया था।

तब परमेश्वर की दिव्य ज्योति सम्भूत गौतम बुद्ध ने आकार विश्व का कल्याण किया, प्राणियों में सद्भावनायें पैदा की।

ईसा पूर्व ६२३ में बुद्ध का जन्म नैपाल की तराई में स्थित कपिलवस्तु के शाक्य राजा शुद्धोदन की बड़ी रानी के उदर से हुआ था। बुद्ध को जन्म देते ही उनकी बड़ी माता मायादेवी उन्हें धरती माता की गोद में छोड़कर संसार से विदा हो गई। बालक का पालन-पोषण उसकी मौसी छोटी रानी ने किया। कुमारावस्था में बुद्ध का नाम सिद्धार्थ था।

सिद्धार्थ शरद् पूर्णिमा के चाँद की तरह सुन्दर राजकुमार थे। उनके अन्तर में सूर्य का प्रकाश था और बुद्धि में सरस्वती निवास करती थी।

राजा शुद्धोदन को पुत्र सिद्धार्थ की प्राप्ति बहुत सी इच्छाओं और पूजाओं

के प्रसाद रूप में हुई थी, इसलिए राजकुमार सिद्धार्थ राजा और प्रजा के बहुत ही प्रिय राजपुत्र थे। सिद्धार्थ का गौतम नाम तो उनकी वंश परम्परा के अनुसार था, और क्योंकि वे शाक्य जाति से उत्पन्न हुए थे इसलिए उनका नाम शाक्यसिंह भी रहा।

सिद्धार्थ का विवाह एक अत्यन्त रूपवती राजकन्या यशोधरा से हुआ था। राजकुमारी यशोधरा का दूसरा प्यार का नाम गोपा भी था। गोपा शिक्षा, सौन्दर्य और गुणों की देवी थी। विवाह के कुछ समय बाद सिद्धार्थ और यशोधरा को एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। माँ, बाप और बाबा ने लाडले बेटे का नाम राहुल रखा।

सिद्धार्थ सब प्रकार से सुखी थे, स्त्री सुख, पुत्र सुख, राज सुख, सब उनके चरणों में थे। पर सिद्धार्थ धरती पर सुख भोगने के लिए नहीं आये थे, ये तो दु:ख सहकर प्राणी मात्र को दु:खों से मुक्त करने के लिए अवतीर्ण हुए थे।

एक दिन बुद्ध ने एक बूढ़े रोगी का सड़ा हुआ शव देखा, जिसे देखते ही उनके मन में वैराग्य भावना वेग से जाग उठी। शरीर की घृणित और अन्त दशा की कल्पना करके वे कांप उठे। लारों से भीगी हुई आमिष रहित चींटियों से लदी हुई सड़ी देह देख सोचने लगे—"कहाँ है इसका रूप, कहाँ है इसकी जवानी, कहाँ है इसका वह शब्द जो इस शरीर का राजा और रक्षक था, कहाँ है वह सत्य जो इससे निकल गया ?

देह नश्वर है, मैं कौन हूँ, कहां से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, वह तत्व कहाँ गया जो मुखर था, मैं उसे खोजूंगा।

मैं उसे पाकर रहूँगा, जो शाश्वत है। वह कौन है जो पानी में नहीं गलता, आग में नहीं जलता, जिसके इशारे से सूरज निकलता है, हवा चलती है, धरा

धन उगलती है ? कौन है वह शक्ति जो मृत्यु से नही मरती ? मैं उसे जानना चाहता हूँ, मैं उसे जानकर रहूँगा।

राहुल से मेरा क्या सम्बन्ध है, यशोधरा भी मेरी नहीं है। राजा और राज्य भी छल है, क्योंकि इनसे एक न एक दिन नाता टूटना निश्चित है। यह निश्चित कुछ नहीं, केवल अनिश्चितता ही निश्चित है।

जब सब नश्वर है तो फिर मोह कैसा ? मोह ही दुःख का कारण है। ममता स्वयं को डसने वाली होती है। ममता और मोह के धोखे से बचो, इनमें मीठा जहर है।

चल सिद्धार्थ ! इस धोखे के संसार से दूर चल, यह छल भरी दुनिया तेरी दुनिया नहीं। तेरी दुनिया वहाँ है, जहाँ सत्य है, शिव है और शान्ति है।"

सोचते-सोचते सिद्धार्थ जागरूक होकर खड़े हुए। वे वहाँ आये, जहाँ श्वेत शैय्या पर शरद पूर्णिमा की चाँदनी को लज्जित करने वाली गोपा सो रही थी। बुद्ध ने उस अपार सौन्दर्य को देखा, क्षण भर के लिए उनके मन में मोह का झटका लगा, पर दूसरे ही क्षण उन्होंने पत्नी और पुत्र से मुँह मोड़ लिया।

राजपाट त्याग कर गौतम बुद्ध सत्य की खोज में बन-बन में तपस्या करते रहे, वर्षों योगाभ्यास किया। तदनन्तर तप और साधना की। तप काल में उन पर बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ आईं। राक्षसों ने सताया, जंगली जानवर इन्हें डराते रहे, पर वे किसी भी तूफान से पीछे न हटे, उनका शरीर सूख कर काँटा हो गया पर वे हारे नहीं।

दुनिया में जहां दुःख देने वाले होते हैं, वहाँ धीरज देने वाले भी हैं। जब गौतम भूख और प्यास से मरणासन्न हो गये तब एक ग्रामीण कन्या ने आकर अपने हाथ से उन्हें भोजन कराया, और इस भोजन से बुद्ध में नये जीवन का संचार हो उठा।

इस प्रकार बुद्ध कितनी ही विपदाओं के पहाड़ों पर चढ़ते हुए चोटी पर पहुँच गये, उन्हें सिद्धि मिल गई। जिस क्षण सिद्धार्थ को सिद्धि मिली, उस क्षण मेघ नृत्य करने लगे, सुगन्धित समीर बह चला, वृन्त-वृन्त पर फूलों का हास जय गीत गाने लगा, धरती और आकाश ज्योतिवन्त हो गये।

सिद्धि पाकर सिद्धार्थ लोक कल्याण के लिए चल पड़े। उन्होंने मनुष्य की पशु भावना के विरुद्ध सत्य, शान्ति और अहिंसा की आवाज उठाई। विश्व कल्याण के लिए उन्होंने बुद्ध संघ की स्थापना की जिसमें धीरे-धीरे उनके शिष्यों की संख्या बढ़ती चली गई।

गौतम बुद्ध और उनके शिष्य मानव कल्याण के लिए द्वार-द्वार अलख जगाते फिरे। उन्होंने युद्ध करने वाले हिंसकों से पुकार-पुकार कर कहा—"आदमी को आदमी का मददगार बनना चाहिये, हत्यारा नहीं। तुम मनुष्य हो तो मनुष्य के लिए जीओ और मनुष्य के लिए मर जाओ।"

पशु बलि को उन्होंने रोका, आवश्यकता से अधिक संग्रह को उन्होंने मना किया। उन्होंने जोड़ने को रोका और ज़ो अपने से बचे उसे दूसरों के लिए दान करने को कहा।

भगवान् बुद्ध ने आत्मोत्थान का उपदेश किया। उन्होंने बताया कि पापी को शस्त्र से मार कर सजा देना पाप है, यदि पुण्य कमाना चाहते हो तो पापी का हृदय परिवर्तन कर दो।

गौतम बुद्ध ने मुक्त होकर मुक्ति का सन्देश दिया। वे आत्मा को जीवन का दीपक कहते थे। उनका सिद्धान्त था कि अपने दीपक आप बनो। उन्होंने मनुष्य से काँटों में फूल की तरह खिलने को कहा। मानव कल्याण के लिए उन्होंने आठ मार्ग बताये जो शुद्ध ज्ञान, शुद्ध संकल्प, शुद्ध वार्तालाप, शुद्ध

आचरण, शुद्ध जीवन, शुद्ध प्रयत्न, शुद्ध विचार और शुद्ध समाधि पर आधारित हैं। उनके अष्ट मार्ग अहिंसा, कर्म, जात-पाँत में अविश्वास, समानता, शुद्धाचार आदि आदर्शों पर चलने का निर्देश करते हैं।

बुद्ध का सन्देश निवृत्ति का सन्देश है। निवृत्ति में सुख है, शान्ति है और शिव है। उसमें संसार से भोगने का आदेश नहीं है, अपितु संसार को आदर्श बनाने का सन्देश है ? त्याग से, तपस्या से और शान्ति से समाज को बदलने का भावात्मक विधान है। बुद्ध के बारे में कहा जाता है कि वे ईश्वरवादी नहीं थे, पर बुद्ध की वाणी से इसका स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता। क्योंकि वे पशु-पक्षियों में भी आत्मैक्य का अनुभव करते थे, इसलिए उन्हें अनात्मवादी भी नहीं कहा जा सकता। सिद्धान्त जगत में चाहे उन्हें कोई भी कुछ कहे, पर भाव जगत में बुद्ध वैदिक सिद्धान्तों पर ही टिके हुए थे। वे कर्मवीर सन्यासी कहे जा सकते हैं। बहुत से उन्हें गाँधी जी की भूमिका के रूप में देखते हैं। यह अवश्य है कि जो पथ बुद्ध ने निर्माण किया, बहुत कुछ गाँधी जी भी उसी पर चले और इस खूबी से चले कि उन्होंने राजनीति में उन आदर्शों का निर्वाह किया।

निस्सन्देह बुद्ध में एक अद्भुत प्रकाश था जो संसार के बहुत बड़े भाग तक फैलता चला गया। उन्होंने युग पर एक बहुत बड़ी छाप छोड़ी जिसने उस काल में अंधेरे में उजाला किया।



आचार्य चाणक्य

सीधी उँगलियों से जब घी नहीं निकलता तो उँगलियाँ टेढ़ी करनी ही पड़ती हैं। सीधापन भी बहुत स्थलों पर बड़ा दोष होता है। वक्र चन्द्रमा को राहु कभी नहीं ग्रसता। टेढ़े से सबको शंका होती है। तलवार टेढ़ी होती है तभी तो वह काट करती है। कमान वक्र होती है तभी तो उससे तीर चलता है। आँधी जब टेढ़ी तिरछी होती है तो कण कण कांप उठता है।

तिरछी तलवार, टेढ़ी कमान, बांकी आँधी और वक्र मनुष्य इसीलिये होते हैं कि टेढ़े को सीधा कर दें। दुष्ट दुष्टता से ही सीधा होता है, मनुष्यता से मनुष्य मानते हैं, हैवानों के लिए मानवता नहीं कुटिल बुद्धि की आवश्यकता है।

अतः इतिहास में जहाँ गांधी जी जैसे सीधे, सच्चे सत्यवादी युगपुरुष हैं, वहाँ चाणक्य जैसे कूटनीतिज्ञ भी हैं। आचार्य चाणक्य हमारे इतिहास के एक ऐसे देवता हैं जो गंगा की तरह निर्मल और तलवार की तरह तिरछे थे।

बहुत दिन हुए भारतवर्ष में चणक नाम के एक परम तपस्वी ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि ये विद्या के केन्द्र तक्षशिला के रहने वाले थे। इनकी पत्नी युवावस्था में ही एक बालक छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो गई थी। चणक के इसी पुत्र का नाम इतिहास-प्रसिद्ध आचार्य चाणक्य है। चाणक्य का बचपन का नाम कौटिल्य था।

कौटिल्य बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि और क्रोधी स्वभाव के थे तथा बाल जीवन में उसके साथी बालक उनका नेतृत्व मानते थे और उनसे डरते थे। पर कौटिल्य का नेतृत्व केवल इसलिए नहीं था कि वे क्रूर थे, बल्कि यह बात अधिक थी कि वे अपने सखाओं से अपने तन से भी अधिक प्रेम करते थे। कितनी ही बार वे उनके हित के लिए स्वयं को खतरे में डाल देते थे। बहुत बार उन्होंने आग में घुसकर अपने साथियों की सहायता की।

पढ़ने लिखने में तो कौटिल्य बहुत ही तेज थे, छोटी अवस्था में ही उन्होंने अपने पिता से बहुत कुछ पढ़ लिया था। कौटिल्य के पिता चणक मगध के राजा धननन्द के यहाँ सम्मानित राज ब्राह्मण थे।

धननन्द की राजधानी पाटलिपुत्र थी। मगध राज्य यद्यपि बड़ा दृढ़ और सम्पन्न राज्य था तथापि धननन्द बहुत ही विलासी और अपनी इच्छा का राजा था। वह जिसे जरा भी राज्य-विरुद्ध पाता उसी को सूली पर चढ़ा देता था।

धननन्द के एक परम कुशल मन्त्री शकटार थे। एक बार चणक ने शकटार के साथ मिलकर राज्यहित के लिए कुछ कुचक्र रचा, पर धननन्द के बुद्धिमान अमात्य राक्षस की बुद्धि के कारण रहस्य खुल गया, और इस विद्रोह

के लिये धननन्द ने ब्राह्मण चणक को सूली पर चढ़वा दिया तथा शकटार को परिवार सहित कैद में डाल दिया। जेल में एक-एक करके भूख से बिलख-बिलख शकटार का सारा परिवार खप गया और प्रतिशोध की भावना के लिए सिर्फ शकटार जीवित रहे।

उधर पिता के वध का घाव हृदय में लिये कौटिल्य तक्षशिला महाविद्यालय में पढ़ते रहे। अध्ययन काल में कौटिल्य का नाम वात्स्यायन था। वात्स्यायन ने तक्षशिला में अध्ययन किया और फिर वहीं पर वे प्राध्यापक हो गये।

वात्स्यायन जब आचार्य हुए तब उनका नाम आचार्य विष्णुगुप्त था। अध्यापन काल में वे विद्यार्थियों के ऐसे आराध्य रहे कि उनका प्रत्येक विद्यार्थी उनके वाक्य को ब्रह्म-वाक्य मान उनके गुण गाता था। थोड़े ही दिन में विष्णुगुप्त की ख्याति ऐसी फैली कि बड़े-बड़े युवराज उनके शिष्य होने तक्षशिला महाविद्यालय में आये।

मगध, मालव, पंचनद, तक्षशिला आदि के राजपुत्रों ने आचार्य विष्णुगुप्त के चरणों में शिक्षा प्राप्त की। विष्णुगुप्त राजनीति, शस्त्र, साहित्य, विज्ञान, धर्म सभी प्रकार की शिक्षा देने में दक्ष थे। उन्होंने युवराजों को शिक्षा देने के साथ साथ वात्सल्य से अपने इतना निकट खींच लिया कि राजकुमार उनकी चरण-धूलि को चन्दन से भी श्रेष्ट मानकर माथे पर मलने लगे।

चाणक्य के इन प्रिय शिष्यों में चन्द्रगुप्त नाम का एक नौजवान भी था, जो शस्त्र विद्या में अद्वितीय था एवं सब से अधिक गुरुभक्त था। आचार्य विष्णुगुप्त का भी चन्द्रगुप्त पर अपार स्नेह था।

एक दिन की बात है कि आचार्य विष्णुगुप्त पसीने में लथपथ घास उखाड़ रहे और जड़ों में मट्ठा डालते जाते थे। उधर से मगध के मन्त्री से बन्दी और बन्दी से फिर मन्त्री बनने वाले शकटार कहीं से घूमते हुए आ निकले।

एक काले और क्रूर ब्राह्मण का यह अद्‌भुत खेल देखकर आचार्य से पूछा–'यह क्या कर रहे हो महात्मा!'

चाणक्य ने उसी तरह घास की जड़ों में मट्ठा डालते हुए कहा—'यह घास मेरे पैरों में चुभकर मेरा मार्ग रोकती थी, मैं अपने रास्ते की बाधा हटा रहा हूँ और जड़ों में मट्ठा इसलिए डाल रहा हूँ कि घास फिर कभी पैदा न हो।'

विष्णुगुप्त की यह रौद्र क्रिया देख शकटार ने सोचा ऐसा क्रोधी ब्राह्मण कहीं धननन्द से रुष्ट हो जाये तो यह उसके वंश तक का नाश कर देगा और मेरे प्रतिरोध की आग बुझ जायेगी।

अपनी इच्छाओं की पूर्ति के रूप में भगवान् विष्णुगुप्त को शकटार ने कहा—'पूज्यवर! मैं मगध का मन्त्री शकटार हूँ। आप महान् और दृढ़ ब्राह्मण हैं। मैं निवेदन करता हूँ कि आप मगध की राज्य सभा में विद्वानों के अग्र आसन को सुशोभित करें। मगध महाराज महानन्द के पिता के श्राद्ध पर जो अग्र आसन आभूषित करता है वही राज्य के विद्वानों में उच्च आसन पर विराजमान होता है। मैं आपको अग्रासन के लिए सादर निमन्त्रित करता हूँ।'

विष्णुगुप्त ने सोचा शत्रु के घर में घुसने का यह सरल अवसर छोड़ना नहीं चाहिये, शत्रु को शत्रु बनकर नहीं मित्र बनकर सरलता से मारा जा सकता है, अतः निमन्त्रण स्वीकार कर लेना चाहिये।

चणक-पुत्र चाणक्य ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और शकटार के साथ चल दिये।

पर जब श्राद्ध के दिन महानन्द ने एक काले और विकराल ब्राह्मण को अग्र आसन पर विराजमान देखा तो जल कर राख हो गया और गर्ज कर बोला—'यह किस काले भृंग को पकड़ लाये हो, निकालो इसे बाहर !

इस पर चाणक्य ने नम्रता से कहा—'विद्वान का सौन्दर्य रूप नहीं, गुण है। इस प्रकार विद्वान का अनादर न करें, नहीं तो भस्म हो जायेंगे।'

चाणक्य के कथन ने अग्नि में घी डाल दिया। नन्द ने धधकते हुए चाणक्य को धक्का दिया और चोटी पकड़ कर खींचते हुये उसे मण्डप के बाहर निकाल दिया।

चाणक्य की चोटी खुल गई और उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक नन्द का वंश सहित नाश कर उसके लहू से अपनी चोटी नहीं रँगूंगा तब तक यह शिखा खुली ही रहेगी।

प्रतिज्ञा करके चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को जो नन्द की परित्यक्ता रानी मुरा का पुत्र कहा जाता है एवं उनका प्रिय शिष्य था अपने साथ लिया और एक ठोस सेना का संगठन किया। साथ ही कूटनीति से मालव और पंचनद को राज्य का लालच दे अपने साथ कर लिया। यही नहीं, चाणक्य ने नन्द के घर तक में वह जाल बिछाया कि नन्द को खबर तक न लगी वह चारों तरफ से फंस गया।

और इस प्रकार चाणक्य ने नन्द को वंश सहित मिटा कर उसके रक्त से अपनी चोटी रँगी और बाँधी तथा चन्द्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन पर आसीन कर दृढ़ मौर्य राज्य की स्थापना की।

यही क्या, चाणक्य ने भारत को यूनानियों के आक्रमण से बचाया और सिकन्दर तथा सेल्यूकस को ऐसा उत्तर दिया कि इतिहास में यूनान को भारत के सामने सदा नतमस्तक रहना पड़ेगा। सेल्यूकस ने अपनी सुन्दर कन्या कार्नेलिया हेलन का विवाह हार कर चन्द्रगुप्त से कर दिया।

अपनी बुद्धि से चाणक्य ने धीरे-धीरे चन्द्रगुप्त को भारत का केन्द्रीय राजा बना दिया तथा चन्द्रगुप्त का राज्य ऐसा शक्ति-सम्पन्न एवं सुखमय बनाया कि प्रजा खुशी के गीत गाने लगी।

चाणक्य के काल में भारत को विदेशी आक्रमणों का भय नहीं रहा, लोग खुले किवाड़ सोते थे, चोरों का भय नहीं था, अपराध के लिये चाणक्य के पास क्षमा का कोई स्थान नहीं था, सब ओर चाणक्य का ऐसा भय था कि कोई अपराध करता ही नहीं था।

चाणक्य का दण्ड-विधान बड़ा कठोर था। उनका रचा हुआ 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' राजनीति का एक बड़ा ग्रन्थ है, जिसमें राजा, प्रजा, पुलिस, सेना विज्ञान आदि सभी का विधान है। चाणक्य के अर्थशास्त्र में राजनीति के सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन है।

कहते हैं चाणक्य चन्द्रगुप्त से लेकर उनके आगे की तीन तीन पीढ़ियों का मगध राज्य के महामन्त्री रहे और उनके काल में भारत महान बना, पर जो साहित्य चाणक्य पर मिलता है उससे पता चलता है कि चाणक्य ने मगध के सुयोग्य मन्त्री राक्षस को ही अपनी उदारता और बुद्धि से महामन्त्री बनाया और स्वयम् कुटिया में रह कर देश की महान् सेवा की।

चाणक्य इतिहास के वे अमर देवता हैं जिन पर बहुत-सा साहित्य रचा जा चुका है और रचा जायेगा। श्री के० एम० मुन्शी का 'भगवान

कौटिल्य', डा० सत्यकेतु का 'आचार्य चाणक्य', हरिनारायण आप्टे का 'चाणक्य और चन्द्रगुप्त', रघुवीर शरण मित्र का 'आग और पानी' आदि चाणक्य पर कितने ही प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

इस प्रकार चाणक्य ने बुद्धि-बल से भारत में दृढ़ राज्य स्थापित कर भारत को महान् बनाया। उनका चरित्र फूल से कोमल और वज्र से कठोर है, उनका इतिहास अद्भुत और उपयोगी है। वे विश्वस्त से विश्वस्त पर भी विश्वास नहीं करते थे। वे कहते थे कि महान् उद्देश्यों के लिए जैसे भी हो सफल बनो, तुम समष्टि के लिए आस्तीन के साँप भी बन सकते हो, जैसे भी हो सिद्धि पाना ही मनुष्य का धर्म है।

समष्टि की कुरीतियाँ मिटाने के लिए तलवार की काट की इतनी आवश्यकता नहीं जितनी बुद्धि की तराश चाहिए। आज भी मनुष्य को किसी ऐसे चाणक्य की ही आवश्यकता है जो अपनी साधुता से पिसती हुई मानवता को बचा सके।



जगद्गुरु शंकराचार्य

"दूसरों को उपदेश देने से पहले स्वयं को पहचानो ! जो स्वयं को भूला हुआ है वह दूसरे का सुधार कैसे करेगा ? तुम अपने को नहीं पहिचानते, जीवात्मा और परमात्मा एक ही है। मरना है तो ऐसे मरो कि फिर जन्म न लेना पड़े। अपने को और संसार को धोखा न दो !"

हैं ! यह कौन है जो हमें सावधान कर रहा है ? ये शिव के अवतार शंकराचार्य हैं, जो पतन की ओर जाते हुए देश का उत्थान करने के लिए अवतीर्ण हुए।

ईसा से सात सौ वर्ष बाद जब बौद्ध धर्म के अनुयायी वेद-विरुद्ध हो गये थे, जब वे ईश्वर की सत्ता को मिटाने का घोर प्रयत्न कर रहे थे, जब वे बुद्ध की मूर्ति घर-घर में स्थापित कर स्वार्थपूजक बनते जा रहे थे, तब केरल देश में शम्भु-स्वरूप शंकर का जन्म हुआ।

शंकराचार्य के बाल जीवन की कहानी का नकारात्मक सा ही पता चलता है। जन्म आदि के बारे में कोई इतिहास नहीं मिलता, कितनी ही अलौकिक कथाएँ उनके सम्बन्ध में जोड़ी जाती है। बहुत कुछ अनुमान उनके जन्म के सम्बन्ध में लगाये जा सकते हैं।

पर इतना अवश्य है कि बाल्यकाल में ही शंकर ने संसार की ममता छोड़ दी थी और अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के सहारे वे छोटी अवस्था में ही बड़े विद्वान् थे। पूर्व जन्य के संचित ज्ञान के आधार पर वे बाल्यकाल में ही लौकिक लीला से उदासीन थे।

कहते हैं माता की अनुमति लेकर वे संन्यासी हो गये थे, तथा उन्होंने विद्या के केन्द्र काशी में आकर शिक्षा पाई। वहाँ उन्होंने सारे शास्त्र और चारों वेदों का पूर्ण अध्ययन किया। अपनी विद्वत्ता और महान् प्रतिज्ञा के बल पर वे तत्कालीन विद्वान् मण्डली में अत्यन्त आदरणीय हुए। १५ वर्ष की अवस्था में ही शंकर की सूझ-बूझ और ज्ञान से बड़े-बड़े विद्वान् चकित थे।

छोटी अवस्था में ही शंकर ने "शारीरिक भाष्य" ग्रन्थ लिखा, जिसमें दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर तर्कसंगत बहस है। और भी कितना ही साहित्य शंकर ने रचा। 'शंकर दिग्विजय' शंकराचार्य की एक अद्भुत जय सृष्टि है।

शंकराचार्य के समय में कुमारिल भट्ट, अद्योतकर आदि कितने ही बड़े-बड़े पंडित थे। कहते हैं उस समय सबसे बड़े विद्वान् मंडल मिश्र थे जिनकी धर्म-पत्नी भी उच्च-कोटि की सरस्वती-सिद्धा थीं और अपने समय में सरस्वती का अवतार मानी जाती थीं।

मंडन मिश्र द्वैत सिद्धान्तों को मानते थे अर्थात् ईश्वर और आत्म दो वस्तु है। पर शंकराचार्य जी अद्वैतवादी थे, उनके अनुसार आत्मा तथा

परमात्मा दोनों एक हा है। शंकराचार्य के मतानुसार सब कुछ एक ही महान् में समाविष्ट है। एक ब्रह्म में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त है।

अन्ततोगत्वा शंकराचार्य ने मंडन मिश्र को ललकारा तथा विद्वानों के मध्य यह निश्चय हुआ कि शास्त्रार्थ में जो जीते उसी के मत को मान्यता दी जाये और जो पराजित हो वह चिता बनाकर जल मरे।

निश्चयानुसार दोनों में शास्त्रार्थ हुआ। मंडन मिश्र की स्त्री सभानेत्री बनी। दोनों विद्वानों में छः मास तक लगातार बहस होती रही। अन्त में मंडन मिश्र पराजित हुए और शंकर की जीत हुई।

कहते हैं जब शंकर विजयी हुए तो मंडन मिश्र की पत्नी ने उन्हें ललकारा और कहा अभी आप जीते नहीं, जीतेंगे तब जब मुझे हरायेंगे, अर्धांगिनी को हराये बिना पति की हार नहीं होती।

फिर क्या था चुनौती सुनकर शंकराचार्य मंडन मिश्र की पत्नी से शास्त्रार्थ के लिए बैठ गये। पर पहले प्रश्न में ही शंकराचार्य चित्त होने लगे। प्रश्न कामशास्त्र से सम्बन्धित था और शंकराचार्य घोटमघोट ब्रह्मचारी थे। अतः गोल होकर बोले—'हे देवि! इस सम्बन्ध में शास्त्रार्थ के लिए मैं छः मास का अवकाश चाहता हूँ।'

सरस्वती ने आज्ञा दे दी और शंकराचार्य अपनी शिष्य मंडली में आकर बोले—"मैं छः मास के लिए अपना शरीर छोड़कर जा रहा हूँ। शरीर को सुरक्षित रखना, कोई क्षति न पहुँचे।"

कहकर शंकराचार्य ने शरीर छोड़ा और उनकी आत्मा तत्काल ही मरे हुए एक राजकुमार के शरीर में प्रविष्ट हो गई। कथित राजकुमार की पत्नी कामशास्त्र में निपुण बड़ी ही सुन्दर थी। शंकराचार्य ने उसके साथ रह कर

कामशास्त्र का पूरा-पूरा अनुभव किया ।

और फिर छः मास बाद शरीर छोड़, पुनः अपने शरीर में आ, शंकराचार्य मंडन मिश्र की पत्नी के पास शास्त्रार्थ के लिए पहुँच गये ।

इस बार बहस में मण्डन मिश्र की पत्नी साक्षात् सरस्वती भी पराजित हुई और निश्चय के अनुसार मण्डन मिश्र अपनी पत्नी सहित जीवित चिता में जल गये ।

जय पाकर शंकराचार्य ने आचार्य पद ग्रहण किया ।

आचार्य पर ग्रहण कर शंकराचार्य अद्वैत सिद्धान्त की विजय के लिए समस्त भारत में घूमे । स्थान-स्थान पर विद्वानों को पराजित कर वे अद्वैत सिद्धान्तों को दृढ़ता से स्थापित करते चले गये । यही 'शंकर दिग्विजय' है ।

शंकराचार्य ने दूसरे मतोंका खण्डन और अपने मत का मण्डन बड़ी ही कोमलता से किया । किसी भी मत का खण्डन करने से पहले उन्होंने उस मत का पूरा-पूरा अध्ययन किया । देश में उस समय बिगड़ा हुआ बौद्ध धर्म छाया हुआ था । शंकर ने बौद्धों के संघों में रह कर उनकी गतिविधि और सिद्धान्तों को पढ़ा और परखा । तदनन्तर बौद्ध धर्म का नम्रता से शमन किया ।

घटना प्रसिद्ध है कि एक बार बौद्धों में शंकर प्रच्छन्न रूप से बौद्ध बनकर उनके धर्म और सिद्धान्तों को सीख रहे थे । एक दिन बौद्धों को पता चल गया कि यह बौद्ध नहीं, विरोधी है । वे डण्डे लेकर शंकर को मारने के लिये दौड़े । बचते हुए शंकर छत पर चढ़ गये पर बौद्धों ने वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा ।

प्राण बचने का कोई उपाय न देख शंकर यह कहते हुए छत से सड़क पर कूद पड़े कि—"यदि ईश्वर है तो मेरा कुछ नहीं बिगड़े ।"

नीचे गिरते ही शंकर की टांग में लँगड़ाहट आ गई और बौद्धों ने चिल्लाकर कहा—"देख दुष्ट ! तेरा ईश्वर नहीं है, तभी तो तेरी टांग टूट गई।"

उत्तर में शंकर ने कहा—"मैंने कहा था कि यदि ईश्वर है तो मेरा कुछ न बिगड़े। कहते समय मैंने 'यदि' लगाकर ईश्वर पर सन्देह किया था, तभी पैर में चोट लगी। यदि ईश्वर पर सन्देह न हो तो ईश्वर प्रत्यक्ष और पूर्ण सहायक होता है।"

बस उसके बाद शंकराचार्य ने कोने-कोने में भ्रमण किया। उन्होंने पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में चार केन्द्र स्थापित किये। उनके इन केन्द्रों के गुरु भारती, सरस्वती, तीर्थ तथा आश्रम कहलाते हैं। चारों मठों के प्रधान इनके बाद जगद्गुरु शंकराचार्य की उपाधि से विभूषित होते चले आते है। शंकराचार्य जी के बारह प्रधान शिष्य थे, इनमें आठ उच्च श्रेणी के और चार निम्न श्रेणी के थे। भारतीय धार्मिक इतिहास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

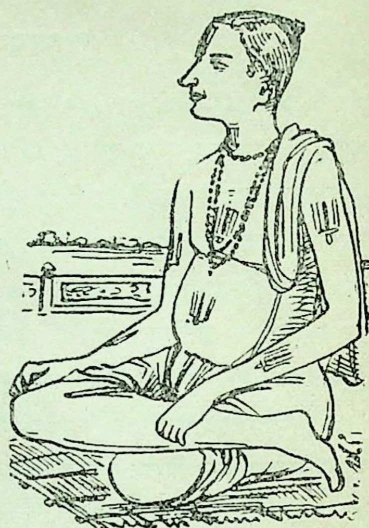
शंकराचार्य भारतीय संस्कृति और मानव मात्र को जगाने के लिये निस्सन्देह अद्वितीय थे। वे मनुष्य से कहते थे "तू स्वयम से पूछ कि तू कौन है, कहां से आया है और कहाँ जायेगा। तेरा परिणाम क्या है, तू अपने जीवन के उद्देश्य को समझ। जीवन का रहस्य समझना आवश्यक हैं। सुख के पीछे भटकने से पहले सुख की परिभाषा को जान। सृष्टि का आदि कर्त्ता परब्रह्म सुख और दुःख से परे है। जीवात्मा उसी परब्रह्म का अंश है। जब तू अन्तर्मुख होकर परब्रह्म से साक्षात्कार करेगा तभी तू सुखी होगा। इसलिए तू यह जान कि तुझमें और परब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है, परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वत्र है, ईश्वर है, परमात्मा है, यही अद्वैत पद है।"

बौद्ध प्रत्येक जीव सत्ता को स्वतः सिद्ध मानते हैं। किन्तु शंकराचार्य कहते हैं—"सब एक ही रूप का प्रतिबिम्ब है, सबका सब से मिल जाना ही अन्तिम उद्देश्य है। दूसरे पर दया करके कोई दूसरे का नहीं अपना ही उपकार करता है क्योंकि दुखी को देखकर जो दुखी होता है, दुखी का दुःख दूर कर वह स्वयं सुखी भी होता है। तू मैं हूँ, मैं तू है, यही सत्य है। प्राणी पर दया करनी चाहिये। गृहस्थी रहकर भी मनुष्य आत्म-कल्याण कर सकता है पर अन्त में सन्यासी बनकर आत्म-चिंतन करना ही श्रेष्ठ है।

इस प्रकार शंकराचार्य ने दुःखों में भूले और भटकते हुए प्राणी को ईश्वर का अमिट आधार दिया, बुद्ध के नाम पर समाज के भ्रष्ट होते हुए आचार की रक्षा की। भक्ति और ज्ञान का सूरज दिखाकर वे हमें अंधेरे में से उजाले में लाये। बार-बार जन्म लेने, बार-बार मरने और बार-बार माँ के पेट की जठराग्नि में जलने से बचने वाले शंकर ने मानव को गोविन्द भजन का सिद्ध मन्त्र दिया।

वह एक ज्योति थी जो सवेरे की तरह मानव को जगाती चली गई, वह एक शक्ति थी जो भागे हुए मनुष्य को कर्म की ओर ले आई, वह एक प्रेरणा थी जिसने मरे हुए प्राणों में आवाज फूंक दी, वह एक शंख था जिसके घोष से मन्दिरों में सोई हुई आरती मुखर हो उठी।

और इस प्रकार जगाती हुई वह वीणा केवल बत्तीस वर्ष की आयु में ही मौन हो गई। समाधि से जागे हुए शिव फिर समाधि में सो गये। आज फिर कहीं-कहीं से आवाज आ रही है, "ईश्वर नहीं है", इसलिये हे शंकर! जागो फिर जागो!



सन्त तुलसीदास

जब धरती मूर्छित हो जाती है तो कवि आवाज देकर उसे जगाता है। जब किसी देश, जाति अथवा युग में विनाशाग्नि धधक उठती है तो गीतकार गीतों की वर्षा से उसे बुझाता है। शब्दकार की ध्वनि ईश्वर की प्रति-ध्वनि है।

महात्मा तुलसीदास तब आये जब भारतीय संस्कृति पर विदेशी मेघ मंडरा रहे थे, जब हिन्दुस्तान में बैर की जड़ें जमाई जा रही थीं, जब भारत माता का अस्तित्व और सतीत्व खतरे में था।

भारतीय इतिहास में सन् १३७५ से १७०० तक वह समय आया जब हारे हुए हिन्दुस्तानी को केवल भगवान् की भक्ति का ही आधार रह गया था, क्योंकि उनकी रक्षा करने वाली राजपूती तलवारें आपस की फूट और विदेशियों की तलवारों से टकरा टकरा कर कुण्ठित हो गई थीं। १०५० से १३७५ तक

ऐसा काल रहा जिसमें वीरों के साथ साथ कवियों ने भी वीर हुंकार की, पर धीरे धीरे हिन्दू राजाओं ने या तो आत्मसमर्पण कर दिया या राजस्थान के दुर्गों पर गर्व से ग्रीवा उठाये विदेशियों को ललकारते रहे ।

कुछ भी हुआ पर भारतीयता इतनी सस्ती नहीं थी जो अत्याचारों से मिट जाती । हमारी संस्कृति तो आत्मा की तरह अमर है, अग्नि उसे जला नहीं सकती, काल उसे खा नहीं सकता ।

जानते हो किस लिये ? इसलिये कि भारत की मिट्टी में वे उत्पन्न होते हैं जो विश्व की ज्योति हैं । भारत-भूमि महात्माओं की जन्म-भूमि है ।

विश्व-ज्योति महात्मा तुलसीदास का जन्म प्रयाग के निकटवर्ती यमुना के दक्षिण में स्थित राजापुर नामक ग्राम में हुआ । इनके पिता आत्माराम दुबे बड़े भक्त विद्वान सरयूपरीणी ब्राह्मण थे । तुलसीदास जी की माता का नाम हुलसी था । कहानी प्रचलित है कि एक बार क्यालु तु ल
निर्धन अपनी कन्या के विवाह के लिये धन की फरियाद लेकर आया । तुलसी ने एक पर्चे पर उसकी आवश्यकता लिख कर उसे दानवीर कवि रहीम के पास भेज दिया और पर्चे पर अन्त में लिख दिया 'सुरतिय, नरतिय, नागतिय सब चाहत अस होय ।'

उत्तर में रहीम ने गरीब को एक लाख रुपये देकर उपर्युक्त पंक्ति के नीचे लिख दिया 'गोद लिये हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय ।'

तुलसीदास का बचपन बड़ा ही करुण बीता । बाल्यकाल में उन्हें अभिशाप समझा गया, कारण वे मूलों में पैदा हुए थे । कहते हैं, जन्म लेते ही उनके मुँह से राम निकला और उनके मुँह में बत्तीस दाँत भी थे, इसलिये रूढ़िवादियों ने उस समय उनको विनाश का लक्षण माना ।

इस तरह बचपन में तिरस्कार की ठोकरें खाते हुए तुलसी बड़े हुए, उन्होंने

दर दर पर दुतकारे सहे। बालक की ऐसी दशा देख उस काल के परम वैष्णव साधु नरहिर की दृष्टि में दया आई और उन्होंने बालक तुलसी को हृदय से लगा लिया।

साधु नरहरि ने तुलसी का रामबोला नाम रखा और उसका बड़े प्रेम से पालन पोषण किया, स्वयम् उसे पढ़ाया, यज्ञोपवीत कराया तथा पुराण, साहित्य और संगीत में उनको निपुण किया।

कुछ समय बाद तुलसीदास का विवाह एक सुन्दर, सुशील और गुणवती कन्या रत्ना से हुआ। रत्ना ऐसी अमृतमयी, सौन्दर्यमयी और छन्दमयी थी कि तुलसीदास अपनी प्रिया पत्नी के प्रेम में दीवाने हो गये। वे हर समय उस रूप की सरिता में मछली की तरह रहने लगे। यदि रत्ना चांद थी तो तुलसी चकोर, यदि तुलसी कमल थे तो रत्ना रवि, यदि रत्ना प्रज्वलित दीपशिखा थी तो तुलसी शलभ, यदि तुलसी फल थे तो रत्ना उसमें बसने वाली सुरभि थी।

आप ही सोचिये कि जिससे इतना अधिक प्यार हो उससे पल भर के लिए भी पृथक कैसे रहा जा सकता है। एक दिन तुलसी कहीं गये थे कि पीछे से रत्ना अपने भाई के साथ माँ के यहाँ चली गई। तुलसी जब आये तो रत्ना को न पाकर विरह विभोर हो उठे।

पड़ोसी ने बताया कि वह यमुना पार अपनी माँ के घर गई है। पर तुलसी तो प्रणय दीवाने थे, उनको सन्तोष नहीं हुआ, वे रात को ही रत्ना के पास अपनी सुसराल चल पड़े।

जिस समय तुलसी चले उस समय तूफान अपनी पूरी तेजी पर था, भयानक वर्षा हो रही थी, कड़क कड़क करती बिजली कौंध रही थी, भीषण गर्जना करते हुए मेघ धू-धू बरस रहे थे, अंधेरे ने काले नाग की तरह धरती को लपेटा हुआ था, और यमुना में प्रलय-सी बाढ़ आ रही थी।

पर प्रेम के पथ में प्रलय हो या तूफान, पथिक कब रुकता है। आंधी, पानी और दलदल से प्रेम का प्यासा नहीं रुका करता, मृत्यु सामने देखकर भी वह अपनी प्रिया के पास चलता ही रहता है।

तुलसी यमुना तट पर आये, कोई नाव नहीं थी, जल भवर की तरह चक्कर काटता हुआ चल रहा था, और उधर चल रहा था तुलसी के हृदय का उद्वेग !

तुलसी यमुना में कूद पड़े, जल की छाती को चीरते हुए वे दो चार हाथ भी न बढ़े थे कि पानी ने क्रोध करके उन्हें डुबाना चाहा, प्रेम पथिक पर पानी की अनीति देख जल में बहती हुई एक लाश को दया आई और उसने तुलसी को अपनी छाती पर चढ़ा लिया।

शव की गोद में बैठे हुए तुलसी दूसरे किनारे पर आ पहुँचे और फिर पहुँच गये उस दरवाजे पर जिसमें उनकी प्रिया नींद में सुगन्धित श्वास ले रही थी।

दरवाजा बन्द था, ऊपर दीवार पर लम्बा काला नाग लटक रहा था, प्रणय के प्यासे ने सर्प को प्रेम का रस्सा समझा और उसे पकड़ कर ऊपर चढ़ गये।

लगन यदि सच्ची हो तो काल भी जीवन बन जाता है, मानो परीक्षा लेकर नाग ने प्रेमयोगी को ऊपर चढ़ा दिया।

छत पर रत्ना सो रही थी, तुलसी चुपचाप उसके पास पहुँचे, तभी बादलों को चीर कर चाँद निकला, तुलसी के चाँद पर चन्द्रमा की किरणें बिखरी, तुलसी झुके कि रत्ना ने चौंक कर चिल्लाने को मुँह खोला।

पर तभी तुलसी ने कहा—मैं हूँ रत्ना ! तुम्हारा प्रिय धन।

पति को सामने देख रत्ना ने विभोर होकर कहा—'मेरे बिना पल भर में

ही पागल हो गये नाथ ! जितना प्रेम तुम मुझ से करते हो इतना यदि श्रीराम से करते तो धरा धन्य हो जाती।

'अस्थिचर्ममय देह मम तासो ऐसी प्रीत।
ऐसी जो श्रीराम में होत न तब भयभीत।।'

तुलसीदास के हृदय में रत्ना की बात चुभ गई, उनका लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम की ओर दौड़ पड़ा, उनकी भावुकता व्यष्टिवादी से समष्टिवादी हो उठी।

रत्ना देखती रही और तुलसी जैसे आये थे वैसे ही लौट पड़े।

'राम ! तुम कहाँ हो राम।'

रत्ना को ढूँढते-ढूँढते तुलसी राम को ढूँढने लगे; ग्रामों में तीर्थस्थानों में भक्तों और विद्वानों में राम को ढूँढते-ढूँढते तुलसी काशी आये और रामायण रचने लगे।

दो वर्ष सात महीने और छब्बीस दिन में तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना की। गोस्वामी जी ने सब मिलाकर बारह प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे—दोहावली, कवित्त रामायण, विनय पत्रिका, रामललानहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, सन्दीपिनी और कृष्ण गीतावली।

इनके अतिरिक्त और भी पुस्तकें तुलसीदास जी की रची हुई कही जाती है, पर उनकी प्रामाणिकता सन्देहात्मक है। उनके उपर्युक्त ग्रन्थ ही इतने तेजवन्त हैं कि जिनसे सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाश मिल सकता हैं। उनकी एक रामायण ही विश्व के सारे साहित्य में सर्वोज्जवल है। तुलसीदास के काव्य में जो था, है और होगा, वह सब है। उनकी रचनाओं में उनके पूर्व का वीर काल है, उनके समय का समस्त भक्ति काल है और उनसे आगे का रीति और आधुनिक काल है। कवि तुलसीदास नौ रस के राजा थे।

कुछ नमूने देखिये :—

'राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परिछाहीं।'

'गोरी गरूर गुमान भरो यह, कौसिक, छोटो सो ढोटो ही काको।'

'प्रबल प्रचण्ड बरिबण्ड बाहुदण्ड बीर,

धाये जातुधान, हनुमान लिये घेरिकै।'

'रीझि आपनि बूझि पर, खीझि विचार विहीन।

ते उपदेश न मानहीं, मोह महोदधि-मीन ।।'

इस प्रकार तुलसीदास रस, अलंकार और छन्दों के कुबेर थे। उनके काव्य को पाकर हिन्दी काव्य इतना सम्पन्न हो गया कि वह विश्व को और युगों को नवीनता दान करता रहेगा।

तुलसीदास केवल कवि ही नहीं थे, वे सन्त, भक्त और लोकनायक भी थे। उनकी भक्ति में काव्य और लोकनायकत्व का ऐसा सामंजस्य है जैसे त्रिगुणात्मक प्रकृति एकरूप है। हमारे तुलसी गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम हैं। उनकी वाणी से त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।

उनकी भक्ति भावना उनकी ही भावुकता भरी वाणी में सुनिये :—

'राम सो बड़ो है कौन, मो सो कौन छोटो,

राम सो खरो है कौन, मो सो कौन खोटो।'

तुलसी के अक्षर अक्षर में उनके राम की पूजा है, उनकी कोई पंक्ति ऐसी नहीं जो राममय न हो। भक्तराज तुलसी ने राम के साथ-साथ उन सभी देवताओं की आराधना की है जो सनातन और शाश्वत हैं। वास्तव में गोस्वामी तुलसीदास भक्ति के अवतार थे।

परम तपस्वी तुलसीदास लोकनायक इसलिये थे कि उन्होंने लोक कल्याण के लिये स्थान-स्थान पर रामचरित सुनाया, वक्ता जो बात मंच से कहता है तुलसीदास ने वही बात काव्य द्वारा जन-जन से कही।

किसी भी लोकनायक ने आज तक कोई वह बात नहीं कही जो लोकनायक तुलसीदास ने किसी न किसी रूप में नहीं कही हो। उन्होंने गिरती हुई भारतीयता को अपने नेतृत्व से उठाया, उन्होंने राजनीति का उपयोगी विधान चित्रित किया है। तुलसीदास के रामचरित-मानस में हमें हर परिस्थिति के अनुरूप उक्ति मिलती है। आप जीवन, जगत और परलोक की किसी भी परिस्थिति में हों तुलसी वाणी आपका साथ देगी।

सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली भक्त कवि लोकनायक तुलसी को पढ़ने से प्राणी का कल्याण होता है। अतः सन्त अपने राम में मिलकर शक्ति, शील और सौन्दर्य के स्रष्टा थे।

जागो! उस युग-स्रष्टा की चेतना भरी आवाज जग को जगा रही है। वह एक ज्योति है जिससे हम अंधेरे से उजाले में आ सकते हैं।

———



महाराणा प्रताप

दीपक वही है जो तूफानों में भी जलता रहे, परवाना वही है जो देश के दीपक पर जल जाये पर उसे बुझने न दे। जिसमें आजादी की आग है उसे कौन बुझा सकता है !

महाराणा ! तुम्हें हथकड़ियाँ नहीं बाँध सकीं, आँधियाँ न बुझा पाईं, आपत्तियाँ तुमसे हार मान गईं, बिजलियाँ तुम पर टूट टूट कर ठंडी हो गईं। कौन है इतिहास में वह वीर जिससे तुम्हारी तुलना की जा सके ?

तुमने तप तप कर भारत माता की आन की रक्षा की, राजपूतों का सर ऊँचा रखा, राजस्थान का कण कण तुम्हारी वीरता के गुण गाता है, हल्दीघाटी की मिट्टी तुम्हारे पैरों से चन्दन बन गई है। मेवाड़ के कण-कण में तुम्हारे पराग की केसर है। अरावली की पहाड़ियों और घाटियों में आज भी तुम्हारी तस्वीर निराकार रूप से दर्शन देती है।

सन् १५७१ में महाराणा प्रताप उदयसिंह की मृत्यु हो गई और उनकी गद्दी पर उनका ज्येष्ठ पुत्र जयमल बैठा। पर जयमल में कोई गुण न था। वह कायर और विलासी प्रकृति का था। अतएव प्रजा ने जयमल को राजगद्दी देने का विरोध किया। परिणामस्वरूप जयमल सिंहासन से उतरे और प्रतापसिंह सिंहासनाधीन किये गये।

प्रताप के एक वीर भाई और भी थे जिनका नाम शक्तिसिंह था। शक्तिसिंह बड़े क्रोधी और स्वाभिमानी थे। बचपन में एक बार प्रताप और शक्ति राजसभा में थे, तभी उनके पिता के पास एक लुहार बहुत ही तेज चमचमाती हुई तलवार बना कर लाया।

राजा उदयसिंह ने राज सभा में कहा—"सभासदो! यह तलवार कैसी है?"

सब तलवार की तारीफ करने लगे, किन्तु शक्तिसिंह ने तलवार हाथ में लेकर अपनी उंगली तराशते हुये कहा—"तलवार की परख चमक से नहीं, काट से की जाती है। तलवार कैसी है, इसका उत्तर युद्ध में शत्रुओं को काट कर देंगे।"

बालक की वीरता से सभासद गद्गद् हो गये। इस घटना के बहुत दिन बाद जब प्रताप और शक्ति भरी जवानी पर थे, तो एक दिन पुरोहित के साथ शिकार खेलने गये। एक शेर सामने आया, दोनों ने एक ही साथ शेर पर वार कर उसे मार डाला।

किन्तु शेर को मारने पर प्रताप ने कहा कि शेर को मैंने मारा और शक्ति ने कहा मैंने मारा है। बात ही बात में बात बढ़ गई और दोनों ने तलवारें तान लीं। हवा के एक झोंके से दोनों ने पैंतरे बदले और दोनों की तलवारें टकराने लगीं।

भाई भाई का यह भयानक युद्ध देख पुरोहित ने चिल्लाकर कहा—

"लड़ाई बन्द करो, तलवारें म्यान में डाल लो !"

पर जब खून चढ़ा हुआ होता है तो कौन किसकी सुनता है ।

लाचार होकर पुरोहित ने कटि से अपनी कटार खींची और कहा—"भाई भाई का युद्ध बन्द करो ! राजपूत की तलवार दानवों का रक्त पीने के लिये है, भाई का रक्त पीने के लिये नहीं । यदि युद्ध बन्द नहीं करोगे तो मैं यह कटार अपनी छाती में भोंक लूंगा ।"

किन्तु दीवाने रुके नहीं और ब्राह्मण ने तड़पकर अपनी छाती में कटार भोंक ली । ब्राह्मण की हत्या देख दोनों भाई तलवार रोककर हट गये । पर शक्तिसिंह का क्रोध शांत न हुआ, वह प्रताप को छोड़कर अकबर महान् के दरबार में जा पहुँचा, मानो अकबर को विभीषण मिल गया ।

अकबर तो हर सम्भव उपाय से महाराणा प्रताप को कुचलना चाहता हथा । अकबर मान् की दृष्टि में स्वतन्त्र मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप तीर की तरह चुभ रहे थे । उसने अपने सेनाध्यक्ष अपने पुत्र सलीम के मामा को महाराणा प्रताप के पास अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव लेकर भेजा, पर गर्वीले प्रताप ने मानसिंह से भेंट तक नहीं की ।

अपने इस अपमान से क्रुद्ध हो मानसिंह चिढ़कर दिल्ली वापिस आ गये और मेवाड़ पर चढ़ाई का बिगुल बजवा दिया ।

पर प्रताप तो प्रतीक्षा में थे, उनकी प्रतिज्ञा थी कि जब तक चित्तौड़ को दासता से मुक्त नहीं करा लूंगा तब तक न शांति से खाऊँगा न शांति से सोऊँगा । जब तक मेवाड़ के खोये हुए वैभव को पुनः न पा लूंगा तब तक आराम नहीं करूंगा । मुगलों की विशाल सेना से लोहा लेने के लिये उनकी भवानी मचल रही थी ।

लाखों की तादाद में अकबर की तूफानी सेना ने सलीम और मानसिंह की सिपहसालारी में कुम्भलसेर पर चढ़ाई की और वीर केसरी प्रताप ने कुल

बाईस हजार देशभक्तों को लेकर उसे हल्दी घाटी के मैदान में ललकारा। मुगलों से युद्ध के लिये वीर राजपूत सर से कफन बाँधकर निकले थे। प्रसिद्ध चेतक घोड़े पर सवार, हाथ में भाला लिये, कटि मे तलवार बांधे शरीर पर दुर्गे का कवच पहने, मेवाड़-गौरव महाराणा प्रताप मुगलों के मस्तक काटने के लिये युद्ध में आ पहुँचे। धधकती हुई आग बढ़ चली, मानो मरघट की भूखी ज्वालायें आक्रान्ताओं का भक्षण करने के लिये निकल पड़ीं। कह नहीं सकते कि वे महाराणा प्रताप थे या महाकाल, क्योंकि श्यामनारायण पाण्डेय की वाणी में :—

यज्ञ अनल सा धधक रहा था वह स्वतन्त्र अधिकारी।
रोम रोम से निकल रही थी चमक चमक चिनगारी॥
भरा हुआ था उर प्रताप का गौरव की चाहों से।
फूंक दिया अपना शरीर हम दुखियों की आहों से॥
जग वैभव उत्सर्ग किया भारत का वीर कहा कर।
माता मुख लाली प्रताप ने रख ली लहू बहाकर॥
निकल रही जिसकी समाधि से स्वतन्त्रता की आगी।
यहीं कहीं पर छिपा हुआ है वह स्वतन्त्र वैरागी॥

मुट्ठी भर राजपूतों को लेकर महाराणा प्रताप समरानल में कूद पड़े। वे एक थे पर लाख होकर निकले। युद्ध में ऐसा कौन शूर था जिसके सर पर महाराणा प्रताप की तलवार नहीं थी। वे गाजर मूली की तरह शत्रुओं को काटने लगे, उनके ताण्डव से शत्रु सेना के पैर उखड़ गये।

पर तुरन्त ही कुमुक आ जाने से वे भागे नहीं। इधर लड़ते लड़ते महाराणा की लाखों को काटती हुई हजारों सेना वीर-गति को प्राप्त हो गई, किन्तु लहू में लथपथ राणा महाकाल की तरह शत्रु भक्षण करते ही रहे।

लड़ते लड़ते महाराणा घायल हो गये, चक्रव्यूह में अभिमन्यु की तरह वे

चारों ओर से घिर गये। उनको फंसा हुआ देखे उनके झाला सरदार ने कहा—'आपके प्राण संकट में हैं, आपका मुकुट माथे पर रख मैं आपके मोर्चे पर लड़ता हूँ। आप यहाँ से चले जायें, क्योंकि आप न रहे तो मेवाड़ का गौरव न रहेगा और मैं मर गया तो आप सैंकड़ों झाला पैदा कर देंगे।'

कहते हुए झाला सरदार ने महाराणा का मुकुट उतार अपने सर पर रख लिया और उनके घोड़े चेतक की ओर इस भाव से देखा कि वह महाराणा को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दे।

लहू में लथपथ चेतक घायल था, लेकिन वह महाराणा के प्राण संकट देख एक पहाड़ी पर कूद उनको दूर ले भागा। पर दो मुगल सैनिकों ने महाराणा को भागते हुए देख लिया और उनके पीछे दौड़ पड़े। प्रताप से रूठ कर भागे हुए भाई शक्तिसिंह भी अकबर की ओर से उस युद्ध में लड़ रहे थे। घायल महाराणा के पीछे दो मुसटन्डे पठान सरदारों को दौड़ते देख उनका भ्रातृ-प्रेम जाग उठा, वे भी महाराणा भाई प्रताप की रक्षा के लिये दौड़ पड़े।

एक झील के किनारे पठानों ने महाराणा को रोक लिया और घायल महाराणा तलवार तान कर युद्ध के लिये डट गये। तभी शक्तिसिंह भी उनकी सहायता को आ पहुँचे और दोनों भाइयों ने मिल कर बात की बात में दोनों पठानों को मौत के घाट उतार दिया।

अपने स्वामी को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा यहीं पर उनके ऐतिहासिक अश्व चेतक ने प्राण छोड़ दिये। आज भी चेतक की समाधि स्वामिभक्ति, वीरता और विजय के गीत गा रही है।

इस प्रकार मेवाड़-रक्षक एवं चित्तौड़-गौरव प्रताप लड़ते-लड़ते अकेले रह गये, पर उन्होंने हिम्मत न हारी। बन बन भटकते फिरे, भूखे रहे, पर स्वतन्त्रता की आग उनके हृदय में बराबर धधकती रही।

लाचारी कभी कभी मनुष्य को थका भी देती है। बनवासी महाराणा के पास न धन था न जन। एक दिन वे बहुत दुखी थे। उनकी हिम्मत टूटने लगी, किन्तु तभी महाराणा को ढूंढता-ढूँढता सेठ भामाशाह उनके पास आया और हाथ जोड़कर बोला--"मेरे पास इतना धन है कि दो वर्ष तक बीस हजार सेना का खर्च चल सकता है। यह धन आज के लिये ही मेरे पास धरोहर था, आप इस धन से सेना का संगठन कीजिये और पराजय को जय में बदल दीजिये।

भामाशाह की देशभक्ति देख महाराणा की आँखें गीली हो गई। उन्होंने भामाशाह के धन से फिर सेना इकट्ठी की और हारे हुए कितने ही स्थान वापिस ले लिये।

इस प्रकार महाराणा जीवन भर स्वतन्त्रता का झण्डा लिये आगे बढ़ते रहे। स्वतन्त्रता के पुजारी प्रताप! तुम्हें बार-बार प्रणाम है।

———



छत्रपति शिवाजी

कहते हैं भगवान् शंकर ने जीजाबाई की पुकार सुनी और उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कहा––"रो मत माँ ! मैं तुम्हारी रक्षा के लिए तुम्हारी गोद में आ रहा हूँ ।"

और फिर सतीत्व की रक्षा के लिए, भारत के जन, धन, प्राण आदि को बचाने के लिए, राम नाम की महिमा साकार करते हुए साक्षात् शंकर स्वरूप शिवा ने जन्म लिया ।

अब से लगभग तीन सौ उनहत्तर वर्ष पूर्व महाराष्ट्र में पूना से तीन सौ मील की दूरी पर शिववीर दुर्ग में वैसाख शुक्ला पंचमी को महाराष्ट्र-केसरी छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ । शिवाजी के पिता शाहजी बीजापुर नरेश के दरबार में एक पदाधिकारी थे । उनकी माता जीजाबाई देवगिरि के सरदार यदुराज की पुत्री थीं ।

जीजाबाई आदर्श एवं वीर क्षत्राणी थीं, उनके रोम रोम में क्षत्री धर्म हुँकार रहा था, देश की दुर्दशा से उनकी आँखें हर समय गीली रहती थीं।

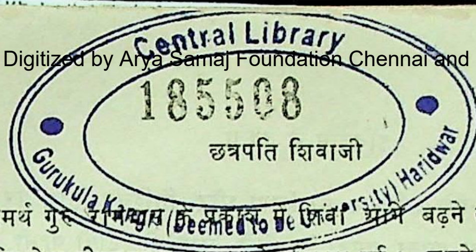
भगवान् शंकर के प्रसाद से जब उनको शिव की पुत्र रूप में प्राप्ति हुई तो वे बालक शिवा को देश के उद्धार के लिए शिक्षा देने लगीं। माता जीजाबाई शिवा को रामायण और महाभारत की कथायें सुनातीं, राम, लक्ष्मण, अर्जुन, भीम, भीष्म आदि के चरित्र सुना सुनाकर उन्हें वीर बनने की प्रेरणा देतीं और उनके हृदय में बचपन से ही देश के उद्धार की भावनायें भरतीं।

शिवाजी जब कुछ बड़े हुए तो कोणदेव नामक एक अध्यापक के पास शिक्षा पाने लगे। दादा कोणदेव ने शिवा को विद्वान बनाने की अपेक्षा वीर बनने की शिक्षा दी। उन्होंने शिवा के हाथ में कलम नहीं खड्ग की धार सौंपी।

तनिक योग्य होते ही शिवाजी ने साथियों का संगठन शुरू कर दिया। उन्होंने अपने जैसे ही नौजवानों को इकट्ठा कर टोली बना ली और जहाँ तहाँ छापे मारने लगे। धीरे-धीरे उनकी धाक बढ़ती चली गई और वे आस-पास के किलों पर कब्जा करने लगे।

वर्षों से सोती हुई मरहठा जाति जागने लगी। वह अपनी रक्षा के लिए, गौ, ब्राह्मण और वेद शास्त्रों के लिए, मन्दिर और शिखा-सूत्र के लिए प्राणोत्सर्ग करने को कटिबद्ध हो गई।

शिवाजी वीर के साथ-साथ बुद्धिमान भी थे। दैवयोग और उनकी भक्ति से उन्हें परम प्रतापी समर्थ गुरु रामदास के चरण मिल गये। समर्थ गुरु रामदास सिद्ध साधु थे। वे कुशल और कूटनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने भारत-मुक्ति के लिए, जल में निरन्तर छः मास तक खड़े रह कर तपस्या की थी।



समर्थ गुरु रामदास के प्रकाश में शिवा आगे बढ़ने लगे। उनकी बढ़ती हुई शक्ति देख बीजापुर दरबार को चिन्ता हुई। उसने शिवाजी के पिता शाहजी को उन्हें रोकने के लिए कहा। शाहजी ने जीजाबाई और शिवा को बीजापुर बुला लिया। पर शिवाजी वहाँ पिता के संतोष के लिए नहीं गये थे, अपितु उन्होंने यह एक अपने लिये शुभावसर माना।

बीजापुर पहुँच कर शिवा ने गुरिल्ला प्रणाली से और भी उपद्रव शुरू कर दिये।

शिवा के उपद्रव देख शाहजी ने कहा—"हम सुलतान के नौकर हैं, तुमको ऐसा नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से हमारी जीविका नष्ट हो जायेगी।"

किन्तु शिवा ने उत्तर दिया—"ये लुटेरे हैं, इनकी गुलामी करना पाप है। मुझ में अच्छा बुरा सोचने की शक्ति है, आप मेरी चिन्ता न कीजिए, मैं यहाँ से चला जाता हूँ, मैंने मातृभूमि को विदेशियों से मुक्त करने का बीड़ा उठाया है।"

गर्वीली माता जीजाबाई को साथ ले होनहार शिवा बीजापुर से चले गये। धीरे-धीरे शिवा ने आस-पास के सभी किलों पर भगवा झंडे फहरा दिये। कुछ ही दिनों में सारे कोंकण देश पर शिवाजी का राज्य हो गया।

बीजापुर दरबार शिवाजी की बढ़ती हुई ताकत देखकर दहल उठा। उसने शिवाजी को जिंदा या मुर्दा लाने के लिये अपने बहादुर सेनापति अफजल खाँ को भेजा। अफजल खाँ छल और बल से शिवा को जीतने के लिये चल पड़ा।

उस धूर्तराज ने एक स्थान पर अपने डेरे डाल शिवाजी के पास सूचना भेजी कि मैं तुमसे दोस्ती का हाथ मिलाने आया हूँ। सुलह की बातचीत करने के लिए तुम मुझसे अकेले पहाड़ की चोटी पर मिलो।

शिवाजी ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और निश्चित तिथि पर वस्त्रों के नीचे लोहे का कवच पहना, पगड़ी के नीचे लोहे की टोपी पहनी, हाथों पर उन्होंने बाघ-नख नामक तेज छल्ला धारण किया और विछवा नामक तेज कटारी अपने पास छिपा कर रख ली।

और फिर रणचण्डी की उपासना कर प्रस्थान के लिए खड़े हो गये। अपने कुछ चुने हुए वीर सैनिकों को निश्चित पहाड़ी के आस-पास चुपचाप छिपने के लिए भेज दिया और कहा—"मेरे मुँह से, 'जय शंकर' का नाद सुनते ही निकल आना।"

शिवाजी के वीर सिपाही चूहे की तरह पहाड़ी झाड़ियों में घुस गये, और शिवाजी घोड़े पर सवार हो समर्थ गुरु रामदास की कुटिया पर आशीर्वाद लेने पहुंचे। समर्थ गुरु ने शिवाजी के साथ-साथ मौत को आते देख मुस्करा कर कहा—"लौट जाओ!" और आशीर्वाद की एक मुट्ठी मिट्टी शिवाजी पर फेंक दी।

गुरु की चरण रज ले शिवा अफजल खां से भेंट के लिए चल पड़े, और समर्थ गुरु ने अपने पास ही बैठे एक प्रकाण्ड ज्योतिषी के सामने कुण्डली खींचकर कहा—"ज्योतिषी जी! इस कुण्डली का क्या लक्षण है?"

कुण्डली देखते ही ज्योतिषी ने घबरा कर कहा—"इसकी तो आज निश्चित मृत्यु है।"

समर्थ गुरु ने हंसकर कुण्डली की ओर देखा और फिर बोले—"कुण्डली को फिर देखिये ज्योतिषी जी!"

इस बार ज्योतिषी जी आश्चर्यान्विन्न होकर बोले—"यह क्या, यह कुण्डली तो वह नहीं है। आपकी दृष्टि से कुण्डली बदल गई, आप समर्थ हैं, मृत्यु को टाल सकते हैं।"

यह कुण्डली शिवाजी की ही थी। शिवाजी अफजल खाँ से भेंट के लिये मृत्यु की तरह भयानक उस डेरे में पहुँचे जिसमें लम्बा चौड़ा पठान अफजल खाँ शिवा को मारने की घात लगा रहा था।

उसने शिवा को भुजाओं में जकड़ने के लिये बांहें फैलाकर कहा—"आओ, हमसे गले मिलो।" जैसे ही शिवाजी अफजल खाँ से गले मिले, वैसे ही उस कपटी ने एक हाथ से शिवा को बाँध दूसरे हाथ से तलवार का एक भरा हाथ उनके सिर और कवच पर किया। किन्तु दुर्ग के कवच ने उनकी रक्षा कर ली, कवच कट गया और शिवाजी पर आँच न आई।

अफजल खाँ के वार सहकर शिवाजी ने पंजे फैलाये और बाघनख से उसका सीना फाड़ दिया तथा दूसरे हाथ से बिछवा कटारी निकाल अफजल खाँ का पेट फाड़ काम तमाम कर दिया।

अफजल खाँ को मारते-मारते ही शिवा ने 'जय शङ्कर' का घोष किया और उनके छिपे हुए साथी अफजल खाँ की सेना पर टूट पड़े तथा कुछ ही क्षणों में शत्रुओं को काट-काट कर शिवाजी के साथी पहाड़ी बिलों के रास्ते नौ-दो ग्यारह हो गये।

इस प्रकार शिवाजी से समस्त आततायी वर्ग थर्रा उठे। बीजापुर दरबार ने शिवाजी से सन्धि कर ली, उसने शिवाजी को ३५ लाख रुपया वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

बीजापुर को जीत शिवा ने मुगल राज्य पर छापे मारने शुरू कर दिये। बाप और भाइयों पर जुल्म करने वाला औरंगजेब शिवाजी को बढ़ते देख घबरा उठा। उसने शायस्त खाँ को एक लाख सेना, पांच सौ हाथी, चार हजार ऊँट, पाँच तोप तथा बत्तीस लाख रुपया नकद देकर शिवाजी को पकड़ने के लिए भेजा।

शायस्त खाँ मार्ग के किलों पर कब्जा करता हुआ पूना पहुँच गया और पूना में भोग विलास में खो गया।

एक दिन एक बरात पूना में आई। इस बनावटी बरात में शिवाजी और उनके पहाड़ी वीर थे। इस बरात ने रात को शायस्त खाँ के किले पर धावा बोल दिया और शिवाजी मारते काटते वहाँ चढ़ गये जहाँ खाँ तलवार नचा रहा था।

वीर शिवा के कर से खाँ का सिर उड़ ही जाता कि वह खिड़की से कूद कर भाग गया, पर भागते हुए खाँ की उँगली शिवा की तलवार से कट गई।

शायस्त खाँ भाग गया और शिवाजी ने फिर हारे हुए किले जीत लिए। पर औरंगजेब ने जयसिंह की सहायता से शिवाजी को सन्धि के बहाने दिल्ली बुलाया और कैद कर लिया, लेकिन शिवाजी ने विष को विष से ही उतारा। एक दिन वे मिठाई के टोकरों में जेल से गायब हो गये। औरंगजेब की जेल से मुक्त हो शिवाजी ने फिर जय पर जय की और अपना सारा खोया हुआ राज्य ले लिया। यज्ञ द्वारा समर्थ गुरु की आज्ञा से उनका राज्याभिषेक हुआ।

अभिषेक होने के पश्चात् शिवाजी ने अपने राज्य का बहुत विस्तार किया तथा राज्य की दशा सुधारी। नागरिकों पर कर कम हो गया, प्रजा सुख से रहने लगी, शिक्षा का विकास हुआ और भारतीयता की आवाज बुलन्द हुई।

एक बार समर्थ गुरु ने शिवाजी के द्वार पर अलख जगाई। शिवाजी गद्‌गद् होकर सिंहासन से नंगे पैरों दौड़ कर द्वार पर आये। गुरु की झोली में यह रुक्का लिख कर डाल दिया कि सारा राज्य आपका है, मैं तो आपके चरणों का सेवक हूँ।

समर्थ गुरु ने शिवा को हृदय से लगा लिया और कहा—"मेरी आज्ञा से तू देश के हित के लिए राज्य कर।" कहते हैं तभी से शिवा के राज्य का झण्डा भगवा है।

इस प्रकार शिवाजी की वीरता के इतिहास की कितनी ही घटनाएँ हैं। आततायी उनके नाम से प्राण छोड़ देते थे। पहाड़ी चूहे के नाम से दुश्मन शिवाजी के गीत गाते थे, क्योंकि शिवा शत्रुओं को काटते और पहाड़ी बिलों में घुस जाते थे। किन्तु श्रेष्ठ मुसलमानों के वे सदा सेवक और भक्त रहे। शिवाजी का चरित्र बड़ा उज्ज्वल था।

शिवाजी के जीवन का श्वास श्वास भारत के लिए सूरज था। उन्होंने गुरिल्ला युद्ध, कूटनीति और महान् वीरता से भारत माँ का मस्तक ऊँचा किया और फिर अपना प्रकाश छोड़ त्रेपन वर्ष की अवस्था में शिवाजी तत्वों में लीन हो गये।



महारानी लक्ष्मीबाई

स्वतन्त्रता संग्राम की वह एक चिनगारी थी जो गदर के इतिहास में नंगी तलवारों पर चमक रही है। आजादी के इतिहास में वह एक ऐसी अग्नि-शिखा है जो दीपक की लौ बन कर रह गई है। अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने वाले राजाओं में वह एक ऐसी स्वतन्त्र रानी है जिसे हम दुर्गा का अवतार कह सकते हैं।

वह जब देखती थी तो बिजलियाँ छिप जाती थीं, वह जब बोलती थी तो तोप और बन्दूकों की आवाज मर जाती थी, वह जब चलती थी तो तूफान साथ चलते थे, वह जब गाती थी तो बंजर में हरियाली हंसने लगती थी। वह ठीकरे को छूती थी तो सोना बन जाता था, वह काठ के टुकड़ों को छू देती थी तो वे फौलाद बन जाते थे। वह एक शक्ति थी, शक्ति !

इतिहास प्रसिद्ध महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म ११ नवम्बर, सन् १८३५ को काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम मोरोपन्थ था और माँ का नाम भगीरथीबाई। लक्ष्मीबाई का बचपन में लाड़ का नाम मनू था। मनू बचपन में ही बड़ी चंट और वीर बालिका थी।

आर्थिक संकट के कारण काशी छोड़कर लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपन्थ अपने कुटूम्बी बाजीराव के पास बिठूर में आकर रहने लगे थे। बिठूर में मनू के बचपन की कितनी ही साहस भरी कहानियाँ हैं। एक बार की घटना है कि बाजीराव के पुत्र अपने भाई नाना और राव के साथ मनू बहस लगा कर घोड़े की सवारी कर रही थी। तेज दौड़ते-दौड़ते एक घोड़े को ठोकर लगी और बालक नाना गिरा। घोड़े का दूसरा पैर बालक की छाती पर पड़ने वाला था कि मनू ने फुर्ती से घोड़े से कूद एक हाथ से घोड़े की टांग पकड़ी तथा दूसरे से बालक को खींच लिया और बालक से बोली—"घबराओ नहीं, कुछ चोट नहीं लगी, जरा सा खून निकला है, कल तक ठीक हो जाओगे।"

इतने में दूसरा बालक राव भी जो पीछे रह गया था वहां आ गया, घबराकर बोला—"अरे, इसके तो बहुत चोट लगी है, सर फट गया।"

पर मनू ने उसकी ओर उपेक्षा से देखते हुए कहा—"कायर कहीं का, जरा सी चोट को बड़ी बताता है, ऊँह!"

और फिर इसी मनू का कुछ दिन बाद झाँसी के राजा गंगाधर राव से विवाह हुआ। विवाह के समय मनू लगभग चौदह वर्ष की थी और गंगाधर राव करीब पचासे में आ गये थे। लेकिन रानी का विवाह तो गंगाधर के साथ-साथ झाँसी के सिंहासन से हुआ था।

जिस समय मनू का आंचल गंगाधर राव की चादर से बांधा जा रहा था तो गठबंधन करते समय बूढ़े पुरोहित के हाथ काँप रहे थे। जब गांठ लगाने में देर हुई तो मनू ने सोचा कि बूढ़े ब्राह्मण को दुःखी करने से क्या लाभ, मैं ही अपने हाथ से गाँठ बाँध लूँ। पर इतने में पुरोहित ही ने ढीली ढाली गांठ बांध ही दी। गांठ ढीली देखकर चंचल मनू ने मुस्कुराते हुए कहा—"पुरोहित जी ! गाँठ ऐसी कसकर बाँधो जो खुले नहीं।"

इस प्रकार गंगाधर राव से विवाह कर शक्तिरूपा मनू पिता के घर से पति के घर झाँसी के महल में आ गई और अब वह झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई कहलाने लगी।

झाँसी आकर महारानी लक्ष्मीबाई ने दाम्पत्य-जीवन से अधिक महत्व साहित्य, संगीत और शस्त्र-शिक्षा को दिया। झाँसी का गौरव बढ़ाने के लिए वह श्वास-श्वास से लग गई। निरंतर श्रम और गुरु कृपा से वह एक दिन पूर्णतया दक्ष हो गई। उस वीरांगना के हृदय में तलवारों की कौंध के साथ-साथ कलाओं का प्रकाश भी जगमगाता था।

किन्तु वह अंग्रेजी दासता का काल था। भारत माता अंग्रेजी की बेड़ियों में जकड़ी छटपटा रही थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन प्रायः सारे भारत पर छा चुका था। झांसी में भी अंग्रेजों के प्रतिनिधि रहते थे। एक प्रकार से अंग्रेज झाँसी में अपने आपको राजा मानते थे। जो सन्धि उनकी झांसी से हुई थी उसे वे तोड़ते जा रहे थे। यहाँ तक कि राजा गंगाधर राव के यहां होने वाले उत्सवों में भी अंग्रेजों ने शामिल होना बन्द कर दिया था, और गोरे प्रच्छन्न रूप से राजा का तिरस्कार करने लगे थे।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों की भावनाएँ पहचान चुकी थीं। वह शनैः शनैः सेना का संगठन और झाँसी राज्य को मजबूत करती जा रही थी।

उसने महिलाओं की एक सेना तैयार की, वीराङ्गनाओं की वह बटालियन इतिहास में अपना सुनहरी स्थान रखती है।

भारत माता की छाती पर अंग्रेजी शासक 'डलहौजी' खूनी बन्दूकें लिए फुंकार रहा था। झाँसी राज्य पर उसकी दृष्टि टिकी हुई थी। उस गरिमाशाली दुर्ग पर वह दांत गड़ाये हुए था। वह भारत के कण-कण में गुलामी की जंजीरें डालने के लिये पंजे फैला रहा था।

और इधर भारत का ईश्वर टेढ़ा हो रहा था। न जाने किन पापों से वे भारत के ढलती के दिन थे। वैभवशाली झांसी राज्य में भी सब कुछ होते हुए युवराज का अभाव था। अतः गंगाधर राव एवं लक्ष्मीबाई ने राज्य का कोई उत्तराधिकारी न देख अपने कुटुम्बी वासुदेव राव के पुत्र आनन्ददेव राव को गोद ले लिया। गोद लेकर राजा और रानी ने आनन्ददेव का नाम दामोदर राव रखा।

झाँसी में उस समय अंग्रेजों का पलिटिकल एजेन्ट मेजर मालकम था। दामोदर राव को गोद लेने की रस्म मालकम के सामने ही हुई थी और राजा ने लिख दिया था कि मेरे बाद झाँसी का राज्य का उत्तराधिकारी मेरा दत्तक पुत्र दामोदर राव होगा। राजा ने मेजर मालकम को लिखकर दे दिया था कि वह बड़े साहब को मेरी इस रजिस्ट्री की सूचना दे दे।

दैव की लीला बड़ी विचित्र होती है। दामोदर राव को गोद लेने के कुछ दिन बाद ही झाँसी नरेश गंगाधर राव इस दुनिया से बिदा हो गये। राजा के बाद रानी ने दामोदर राव के नाम से झाँसी की गद्दी संभाली, पर अंग्रेजों ने इसे स्वीकार नहीं किया।

गोरे मानो इस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा ही कर रहे थे। अंग्रेजों

ने झाँसीं की रानी के पास हुक्म भेजा कि, "दामोदर राव को गोद लेने की रस्म हमारी स्वीकृति से नहीं हुई है और तुम औरत होने के कारण झाँसी का राज्य सफलता से नहीं चला सकतीं। अतः यह आवश्यक है कि झाँसी का राज्य अब अंग्रेज चलायें। रानी लक्ष्मी बाई को जीवन चलाने के लिए झाँसी का महल और सम्मानित वेतन दिया जाये।"

अंग्रेजों का हुक्म सुनते ही रानी चोट खाई हुई नागिन की तरह फुंकार उठी। वह दावानल की लपट की तरह सुलगती हुई बोली—"अंग्रेजों से कह दो, मैं अपनी झाँसी नहीं दूंगी।

अंग्रेज इतिहासकारों ने रानी के इस वाक्य को अपनी भाषा में इस प्रकार कहा है—"मेरा झाँसी देंगा नहीं।" सर रोज ने झाँसी की रानी के बारे में कहा—"She was the best and the brave of them all"
—Sir Hugh Rose.

निस्सन्देह झाँसी की रानी वीरांगनाओं के इतिहास में वह महामाया है जिसने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। अपनी झाँसी के लिए "खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।"

अंग्रेजों की सारी शक्ति रानी पर तूफान बनकर टूट पड़ी। झाँसी को लेने के लिये अंग्रेज तोप और बन्दूकें ले लेकर चढ़ गये पर स्वतन्त्रता की वह साम्राज्ञी मौत की तरह अंग्रेजों की छाती पर खड़ी रही। वह कई दिन तक अपनी सेना के साथ अंग्रेजों से लड़ती रही। रानी के साथ उनकी सखी तथा अन्य महिला फौज भी भूखी शेरनियों की तरह अंग्रेजों का भक्षण कर रही थी। कितने ही गोरे रानी की तलवार के घाट उतर गये।

पर वे बहुत थे। रानी ने जब देखा कि बचने का कोई उपाय नहीं है तो वह विद्रोह की प्रचण्ड आग लेकर अंग्रेजों को चीरती हुई भाग

निकली। वह बिठूर होती हुई ग्वालियर पहुँची। ग्वालियर नरेश मद की नींद सो रहा था, उसने उसे जगाकर अंगरेजों से वहाँ भी युद्ध किया।

किन्तु हैदराबाद निजाम और ग्वालियर के सिन्धियों ने अंग्रेजों का साथ देकर भारत की जय को पराजय में बदल दिया। इस घर में जब भी आग लगी है, तब घर के चिराग से ही लगी है। भारतीयों को दुश्मनों से नहीं, दोस्तों से हानि पहुँची है। अन्ततोगत्वा अंग्रेजों से लड़ती हुई रानी घायल हो गई और उनका घोड़ा उन्हें अंग्रेजों के हाथों से बचाकर रानी के एक बचपन के सखा के पास ले गया जो अब साधु बनकर बन में धूनी रमाये कुटिया में रहता था। लुहूलुहान मनु को देख साधु ने कहा—"यह तुम्हारी क्या दशा हो गई मनू बहिन!"

मनू ने कराहते हुए कहा—"मेरी दशा तो बहुत अच्छी है। बहुत अच्छा हुआ कि अन्त समय में तुम्हारे भी दर्शन हो गये। मुझे मरने का दुःख नहीं है, दुःख है तो केवल इस बात का कि मैं झाँसी को बचाने से पहले मर रही हूँ। हमारी सारी क्रान्तियाँ असफल हो गईं। झाँसी धू-धू जल रही है, अंग्रेज मेरी झाँसी को डाकुओं की तरह लूट रहे हैं, हत्यारों की तरह हमें ही तोपों से बाँध-बाँध कर उड़ा रहे हैं। अब अधिक समय नहीं है, अंग्रेज मुझे ढूंढते-ढूंढते इस कुटिया तक आने ही वाले होंगे। मैं अपने फकीर भाई से यह चाहती हूँ कि मेरा शव अंग्रेजों के हाथ न लगे।"

इतना कहकर भारत की वह ज्वलित दीपशिखा बुझ गई और अंग्रेजों के घोड़ों की टापें सुनाई देने लगीं। कोई चारा न देख साधु ने अपनी धूनी से जलती हुई लकड़ी उठाई और अपनी कुटिया में आग लगा ली। अंग्रेज जब वहाँ आये तो उन्हें झाँसी की रानी की राख ही मिली।

झाँसी की रानी न रही, किन्तु क्रान्ति की वह आग सुलगती रही जिसमें 'तात्या टोपे' और 'भगतसिंह' जैसे कितने ही वीर फाँसी पर चढ़े।

स्वतन्त्रता के लिए सन् सत्तावन की सुलगती हुई आग तभी ठंडी हुई, जब भारत माता के पैरों की बेड़ियाँ कट गईं।

रानी शौर्य और पराक्रम की देवी थी। वह पराधीनता की विनाशिनी आग पर पानी बनकर बरसी। डलहौजी की छाती पर सांपिन बनकर फुँकारती रही। डलहौजी भारत को जलाने के लिये आग लेकर आया था—

पश्चिम से ज्वाला आई थी पानी में आग लगाने को।
पर पानी प्यासा बैठा था जग की ज्वाला पी जाने को।
डलहौजी के गोले बरसे भारत माता की छाती पर।
झाँसी की रानी जाग उठी हो गई खड़ी ऊँचा सर कर।

रानी की तलवार की तेजी की फुर्ती बिजली की तरह थी। उसका वार कहीं था और मार कहीं थी। युद्ध-भूमि में ऐसा कौन वीर था जिसके सर पर रानी की तलवार नहीं थी, वह एक थी पर हजार होकर निकली।

रानी स्वराज्य के लिए लड़ी, स्वराज्य के लिए मरी, और स्वराज्य की नींव का पत्थर बनी। झाँसी की ईंट-ईंट पर महारानी लक्ष्मीबाई की कहानी अंकित है। क्रान्ति की हर चिनगारी पर उसकी तलवार की चमक है। स्वतन्त्रता के हर फूल पर उसके रक्त की लाली है। विद्रोह की वह ज्वाला स्वतन्त्रता का दीपक बनकर जली। कलाओं की वह तूलिका आज आजादी के हर त्यौहार में मचल रही है। वीरता के इतिहास की वह एक उज्ज्वल दीपिका थी जो बुझकर सदा सदा के लिए जल गई और ज्योति दे रही है।



लोकमान्य तिलक

वह एक आवाज थी जिससे दहाड़ते हुए शेर भी डर कर छिप जाते थे। वह ऐसा पांचजन्य था जिसके घोष से शत्रुओं के हथियार हाथ से छूट जाते थे। वह एक आग थी जो धधक कर प्रह्लाद को जलाने वाली होलिका को फूँकने के लिए जिह्वा लपलपाती रहती थी। वह एक प्रचण्ड और शान्त रोष था। वह एक तराश थी जो बिना घाव किये ही खूनी तलवार को काट डालती थी। वह एक सिंहनाद था कि स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

लोकमान्य तिलक जी का जन्म २३ जौलाई, सन् १८५६ में कोंकण के तट पर रत्नगिरि में हुआ था। कोंकण के चितपावन ब्राह्मणों का महत्व है कि वे भारत को बड़े-बड़े महात्मा और महापुरुष देते रहते हैं। तिलक जी भी ब्राह्मण परिवार में ही उत्पन्न हुए थे। महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले,

मराठा साम्राज्य के कर्णधार पेशवा चितपावन ब्राह्मण ही थे। और फिर भारत में तो ब्राह्मण का स्थान सदा ही महत्वपूर्ण रहा है। गुरु और महामात्य के पद पर प्रायः ब्राह्मण ही देदीप्यमान हुए हैं।

तिलक जी के पिता रामचन्द्र गंगाधर राव एक कुशल अध्यापक थे। पिता से पुत्र ने बहुत कुछ सीखा। दस वर्ष की अवस्था में तिलक जी की माता का देहांत हो गया और जब दसवीं की परीक्षा दे रहे थे तो इनके पिता की मृत्यु हो गई।

तिलक बचपन से ही निर्भीक एवं उत्साही थे। उनके जीवन पर वीर मराठाओं की छाप थी, उनके श्वास श्वास में शिवाजी के श्वासों के अंगारे जलते थे, मानों वे हर उपाय से शत्रुओं का नाश कर भारत को स्वतन्त्र करने के लिये वीर शिवाजी के अवतार हों। उनके रोम रोम में सन् सत्तावन के स्वाधीनता-संग्राम की चिनगारियाँ सुलग रही थीं।

तिलक जी गणित के होनहार विद्यार्थी थे। कालिज में वे बड़ों बड़ों को मात दे दिया करते थे। पढ़ाई समाप्त होने पर वे गणित के ही अध्यापक हुए। अध्यापक के साथ साथ वे शिक्षा के प्रचारक भी थे। वे देश से अशिक्षा का अन्धकार दूर करना चाहते थे, इसके लिये वे अंधेरे में दीपक की तरह तप करते रहे। आपने 'मराठा' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक तथा 'केसरी' नामक मराठी साप्ताहिक का सम्पादन और प्रकाशन किया। इन अखबारों में जागरण की निर्भीक आवाज निकली, विद्रोह की भावना भरने में इन पत्रों ने क्रान्तिकारी कार्य किया। देश की स्वतन्त्रता के लिये तिलक जी की वाणी ने जन जन में ज्वाला फूंकी।

लोकमान्य की उग्रता उस तपती हुई प्रचण्ड सूर्याग्नि की तरह थी जो जीवन देती है। तिलक जी को हम क्रान्तिकारी आन्दोलन का जन्म-दाता मानते हैं। रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खाँ, चन्द्रशेखर आजाद और

भगतसिंह जैसे वीर शहीदों में बाल गंगाधर के ओज से ही बल आया। १८६६ में जब अकाल पड़ा तो चारों ओर हाहाकार मच गया। भूखे क्या नहीं करते' के अनुसार जून १८६७ में एक युवक चितपावन ब्राह्मण दामोदर चापेकर ने ब्रिटिश अफसरों की कलकत्ते में हत्या कर डाली। इस हत्याकण्ड में तिलक जी का कोई हाथ नहीं था पर प्रभाव उनकी वाणी का ही समझा गया। बस तभी से देश भर में अतंकवादी आन्दोलन शुरू हो गया।

लोकमान्य का जीवन संघर्षों का जीवन था। आज यह मुकदमा तो कल वह झगड़ा; आज यह तूफान तो कल वह आँधी; आज यह राजनीतिक मत-भेद तो कल वह वितंडावाद। पर तिलक जी रुके नहीं, 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्धि अधिकार है' का घोष बुलन्द ही करते चले गये। काँग्रेस को कमजोरी से निकाल गर्मी में लाये। उन्होंने उसमें जिन्दगी भरी, नयी चेतना से ढीली ढाली चाल को तेज किया।

पीड़ितों की पुकार पर तिलक जी नंगे पैरों दौड़ते थे। देश पर जब अकाल, प्लेग और भूचाल आदि के आक्रमण हुए और इस पर भी लगान वसूली का हाथ सख्त हुआ तो तिलक जी ने देशवासियों को सम्बोधित करते हुए 'केसरी' में लिखा—"यदि तुम्हारे पास सरकार को देने को धन है तो अवश्य दो, लेकिन यदि नहीं है तो मृत्यु सम्मुख देख कर भी तुम दमड़ी न दो।"

सरकार की सख्तियाँ बढ़ गई, महामारी भी बढ़ती चली गई। जनता 'त्राहि-त्राहि' पुकार उठी और रैंड नामक आई० सी० एस० अफसर को महारानी विक्टोरिया के जन्मदिवस पर गोलियों से मार दिया। फिर क्या

था, दमन चक्र चल गया और तिलक जी को उनके साथियों सहित राजद्रोह में बन्दी कर दिया। 'केसरी' के लेखों की पंक्तियाँ सामने ला कर तिलक जी पर आरोप सिद्ध करने के प्रयत्न किये गये। उनसे यहाँ तक कहा गया कि वे वह मान लें कि लेख उनके लिखे नहीं हैं, पर तिलक जी ने इस क्षमा याचना को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा—"जीवन में ऐसा समय भी आता है कि जब अपने ऊपर हमारा अपना अधिकार नहीं रह जाता वरन् हमें अपने साथियों के प्रतिनिधि रूप में आचरण करना होता है।" अदालत ने तिलक जी को १८ महीने का कठोर कारावास का दण्ड दिया।

राजनीतिक नेता को बन्दी बनाने की यह अपने ढंग की प्रथम घटना थी। इस घटना से सारे देश में आग लग उठी और इस दण्ड के विरुद्ध आवाज उठाई गई। पर अंग्रेजों के कानों पर जूँ न रेंगी और तिलक जी को जेल की बैरिकों में रखा गया।

तिलक जी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी दृढ़ता। वे जब अड़ जाते थे तो डिगते नहीं थे। सत्य के लिये संघर्ष उनका स्वभाव था। मन में जो आता उसे मनवाने के लिये साथियों तक से लड़ पड़ते थे। उनके जीवन में ऐसे अवसर भी आये जब मतभेद के कारण उन्हें कितने ही वर्षों तक अपने परखे हुए सहयोगियों को छोड़ एकाकी ही बढ़ना पड़ा। समय पड़ा तो रानाडे फिरोजशाह मेहता तथा गोखले जैसे साथियों तक को भी उन्होंने छोड़ दिया। काँग्रेस में वे अपनी निराली अदा से अडिग रहते थे।

१८८५ और १९०५ के बीच काँग्रेस का रूप स्थिर हुआ और वह शुद्ध अर्थ में देश की आजादी के लिए आन्दोलन बन चुकी थी। पर उसमें नरम

और गर्म का प्रश्न तेज होता चला गया। १९०७ में सूरत काँग्रेस के अवसर पर यह सवाल इतना बढ़ा कि कांग्रेस में दोनों के साथ-साथ रहने की स्थिति नहीं रही। गर्म दल तिलक जी को सभापति बनाना चाहता था तथा नरम दल वालों ने रास बिहारी घोष को चुन लिया। तिलक जी को काफी समय के लिए काँग्रेस से तटस्थ रहना पड़ा।

जो आगे बढ़ता है उसकी राह में चट्टानें आ-आकर खड़ी हो ही जाती हैं, उसके जीवन में संघर्ष पर संघर्ष टूट ही पड़ते हैं। 'केसरी' के कुछ लेखों के आधार पर तिलक जी पर मुकदमा चला और उन्हें ६ वर्ष की कड़ी कैद तथा १००० रु० का दण्ड दिया गया। इस अवसर पर अदालत में ही तिलक जी ने कहा—"जूरी के निर्णय के बावजूद मैं कहूंगा कि मैं निरपराध हूँ। इस संसार के ऊपर भी एक शक्ति है जिसके इशारे पर यहाँ का समस्त व्यापार चलता है। सम्भव है जिस काम को मैंने थोड़ा उठाया है वह मेरे स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा मेरे कष्ट सहन से ही अधिक फूले फले।"

तिलक जी की सजा के विरुद्ध देश भर में विरोध जाग उठा। अपने सर्वाधिक प्रिय एवं सम्मानित नेता के लिये सारे भारत में हड़तालें हुईं। स्कूल, कालिज और मिलों तक के दरवाजे बन्द हो गये। यह पहली राजनीतिक हड़ताल थी।

छः साल तक बर्मा की माँडले जेल में रहने के बाद तिलक जी १७ जून सन् १९१४ को पूना लाये गये। उन्होंने स्वागत के उत्तर में कहा—"अधिकारियों ने मुझे ऐसी कड़ाई के साथ नितान्त अकेला रख छोड़ा था मानों वे चाहते हैं कि मैं दुनिया को भूल जाऊँ और दुनिया मुझे भूल जाये, किन्तु मैं

देशवासियों को भूला नहीं हूँ और प्रसन्नता है कि वे भी मुझे नहीं भूले ।"

और वास्तव में जनता अपने वीर नेता को नहीं भूली। जन-जन के हृदय में उनके लिए अपार विश्वास जाग उठा। लोकमान्य की इस समय पूरी शक्ति थी और वे काँग्रेस में पूरे बल से फिर से आ गये। यह ऐसा काल था कि जब गोखले और फिरोजशाह मेहता का निधन हो चुका था और जब गांधी जी मंच पर आ चुके थे। तिलक जी भी तन, मन, धन से कार्य क्षेत्र में कूद पड़े। उन पर संकट पर संकट आये और बार-बार सजायें मिलीं।

पर जितने संकट आये और जितनी सजायें मिलीं उतने ही वे चमकते चले गये। उनके ६१वें जन्म-दिवस पर उन्हें सारे देश से सम्मान प्राप्त हुआ। उन्हें एक लाख रुपये की थैली भेंट की गई। इस अवसर पर उन्होंने कहा—"मेरे मन में अपेक्षाकृत आनन्द की घड़ियों की स्मृति नहीं जागती है वरन जीवन के तूफान और यातना के दृश्य सामने आते हैं।"

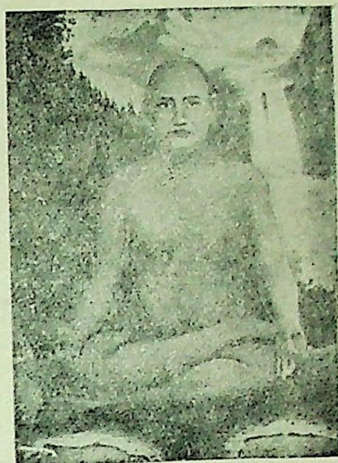
तिलक जी ने "होम रूल" का नारा बुलन्द कर देश भर का दौरा किया और जनता से कहा कि अपने को "होम रूलर" कहने से न हिचको, कहो कि तुम्हें "होम रूल" चाहिये और जब तुम उसके लिये तैयार हो जाओगे तो वह तुम्हें अवश्य मिलेगा। उसी समय भारत सचिव मान्टेग्यू ने अपनी डायरी में लिखा था कि "सम्भवत: इस समय भारत में सबसे अधिक शक्तिमान तिलक ही हैं।"

आजादी की लड़ाई के लिये तिलक जी के जीवन का इतिहास बड़े ही टेढ़े-मेढ़े रास्ते का है। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के समय में भी जनता सोचती थी कि तिलक जी का क्या मत है। खिलाफत के सम्बन्ध में तिलक

जी का कहना था कि मेरे विचार से मुसलमानों को स्वयं इस विषय में आगे बढ़ना चाहिये। मौलाना शौकतअली को उन्होंने आश्वासन दिया कि यदि मुसलमान आगे बढ़ेंगे तो उनका दल और हिन्दू भी अनुगमन करेंगे। तिलक जी की इस समय ऐसी स्थिति थी जैसी पुरानी बोतल में नई शराब हो। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के मुख्य समर्थक थे और खिलाफत आन्दोलन में भाग लेने के लिए जबान दे चुके थे। सन् १८९५ में स्वराज्य का जो नारा उन्होंने उठाया था वह १९०६ के कांग्रेस अधिवेशन में और १९१९ के 'इण्डिया एक्ट' में प्रतिध्वनित हो उठा।

गाँधी जी के आने पर तिलक की सारी आत्मा उनमें चली गई। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के बीच २३ जुलाई को फिर लोकमान्य का ६४वाँ जन्म-दिवस बड़ी धूम धाम से मनाया गया। देश के कोने-कोने से उनके शतायु होने की मंगल कामनायें आईं परन्तु किसको पता था कि लोकमान्य का ६५वाँ जन्म-दिवस नहीं आयेगा। ६४वें जन्म-दिवस के एक सप्ताह बाद ही लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक हमारे बीच से चले गये और हमारी आँखों में आँसू उनके लिए अर्घ्य बनकर रह गये। सारा देश लोकमान्य की मृत्यु से तड़प उठा। गाँधी जी और जवाहरलाल नेहरू अपने नेता के निधन पर तुरन्त बम्बई पहुंचे। गाँधी जी अपने कन्धों पर लोकमान्य की अर्थी सिंधु तट पर ले गये। कोटि-कोटि जनता रोती रही और आँसुओं में महान् नेता की चिता जलती रही तथा जलती ही रहेगी। इस प्रकार कठिन यातनायें सह सहकर वह तपस्वी इस देश में अपनी कहानी छोड़कर चला गया। गाँधी जी ने उन्हें 'अजय सागर' कहा था, रोलेट कमेटी ने उन्हें सबसे खतरनाक आदमी बताया था और जनता उन्हें 'महाराष्ट्र केसरी' एवं 'लोकमान्य' कहकर गर्व करती थी।

धरती पर अपनी गीता का रहस्य छोड़कर वह ज्योति ज्योति में मिल गई। 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के नारे को जन्म देने वाली उस वाणी के प्रताप से आज हम स्वतन्त्र हैं। स्वाधीनता के दुर्ग के नीचे उन महापुरुषों की हड्डियां दबी पड़ी हैं। उनके स्वांस-स्वांस की नींव पर स्वतन्त्र भारत का प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य खड़ा है। स्वतन्त्र भारत में कौनसा वह दीप है जिससे महात्मा तिलक की आरती उतारूँ।



महर्षि दयानन्द

लोहे की जंजीरों से देश और जाति को गुलाम बनाया जा सकता है, पर धर्म लोहे की बेड़ियों से नहीं बंधता। तलवार से मनुष्य को काटा जा सकता है, उसकी भावनाएँ नहीं कटतीं। किसी का सिर काट दो वह मरेगा नहीं; लेकिन यदि तुमने किसी के मन को मार दिया तो वह जीवित ही मर जाता है। लड़ाइयों के हारने से हार नहीं होती, हार तब होती है जब हिम्मत टूट जाती है। मृत्यु तब होती है जब किसी का धर्म मर जाता है।

न जाने कितने शासकों ने भारत को दास बनाकर उसकी संस्कृति में दियासलाई लगाई, उसके धर्म को फूंकना चाहा, उसके साहित्य और रीति-रिवाजों पर आक्रमण किये।

यह ऐसा काल था जब देश में कितनी ही कुरीतियाँ आ चुकी थीं, जब समाज में छूआछूत और जाति भेद का विष फैलता जा रहा था, जब धर्म को कितने ही शीशों से दिखाने की कोशिश की जाती थी। जब अनर्थ होते थे,

जब सारा आचार केवल तिलक-छापों में ही छिप गया था, जब पग-पग पर रूढ़िवाद के रोड़े बिछे हुए थे, जब अनेक देवी-देवताओं की पूजा में देशवासी भटकते जा रहे थे, तब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मार्ग दिखाया।

सम्वत् १८८१ में काठियावाड़ के टङ्कारा नगर में 'जमेदार' कर्सन जी लाल जी तिवारी के एक पुत्र हुआ जिसका नाम मूलशंकर रखा गया। आगे चलकर यही बालक आर्य समाज के प्रसिद्ध प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती हुए।

मूलशंकर के पिता सामवेदी ब्राह्मण थे, पर शिवपूजक होने के कारण यजुर्वेद को बहुत मानते थे। पंडित पिता के प्रसाद से मूलशंकर छोटी आयु में ही वेदविज्ञ हो गये। पिता ने पुत्र को धार्मिक ज्ञान दिया और शिव भक्ति की ओर अग्रसर कर दिया।

चौदह वर्ष की अवस्था में महाशिवरात्रि के पर्व पर मूलशंकर ने व्रत रखा और पिता के साथ मन्दिर में रात भर जागरण के लिए रहे। जागते-जागते बालक ने देखा कि उसके पिता तथा अन्य भक्त जन सो गये हैं और शिव की मूर्ति पर चूहे दौड़ रहे हैं। यह देखकर वह सोचने लगा कि जगत के स्वामी पर चूहे कैसे दौड़ सकते हैं, ये भक्त कैसे हैं जो आये थे पूजा करने और सो गये हैं। सोचते-सोचते मूलशंकर की शका बढ़ती गई और उसने पिता को जगा अनेक प्रश्न कर अपनी शङ्का समाधान करनी चाही।

पर बालक के प्रश्न हल न हुए, उसे मूर्ति पूजा ढोंग प्रतीत होने लगी या कहो कि इस बहाने शिव ने डूबती हुई भारतीयता को बचाने के लिए बालक को जगाया। मानो अपने ऊपर चूहे दौड़ाकर उन्होंने मूलशंकर से कहा—"उठ और सोते हुओं को जगा!"

इस प्रकार जागकर मूलशंकर जिज्ञासा लिए मन्दिर से घर चले आये। उसके मन में तर्क छिड़ गया। अपनी बहन तथा चाचा की मृत्यु देख कर वे मृत्यु से बचने का उपाय सोचने लगे। सत्य की खोज के लिए उनके मन में उथल-पुथल मच गई। समाज के ढोंगों के प्रति उनका मन क्षुब्ध होने लगा। बालक के मन में इस तरह का तूफान देख माता-पिता ने उसके पैरों में विवाह की जंजीर डालनी चाहीं, पर लड़का तो सत्य की खोज में लगा था, विवाह का बन्धन उसे कैसे बाँध सकता था ? एक दिन रात को चुपचाप वह घर छोड़कर सत्य की खोज में निकल पड़ा।

घर से भाग कर मूलशंकर साधु मण्डली में शामिल हो गये। उनको ढूंढते हुए पिता पुलिस को लेकर वहाँ पहुँचे और बेटे को ले आये। पर मूलशंकर के मन में तो ईश्वर की ज्योति जाग रही थी, वह तीसरे दिन फिर घर से भाग गये, और जहाँ भी साधु सग मिला वहाँ ही जिज्ञासु भाव से संग हो लिए।

पंडितों, सन्यासियों, साधुओं और विद्वानों से धर्म लाभ उठाते वे सन्यासी पूर्णानन्द जी के पास पहुँचे और एक दिन पूर्ण सन्यासी हो गये। सन्यास लेने पर इनका नाम दयानन्द सरस्वती रखा गया।

ज्ञानवर्धन और योगाभ्यास की गुत्थियों को सुलझाने के लिए स्वामी जी ने सारे भारत का भ्रमण किया। पहाड़ों और कन्दराओं में घूमकर वे बड़े-बड़े साधु महात्माओं से मिले। हिमालय की गुफाओं में, नदियों के किनारे, महात्माओं की कुटियों पर और ग्रन्थों के अक्षरों में स्वामी जी ने सत्य का आलोक ढूँढा।

स्थान-स्थान पर मिट्टी मस्तक से लगाते हुए ब्रह्मचर्य और तपश्चर्य का प्रकाश फैलाते हुए वे सत्य की खोज में पर्यटन करते रहे। जिसकी जिसके लिए सच्ची लगन होती है, सम्वत् १९१७ में इनकी मथुरा तट पर योगिराज विराजानन्द जी से भेंट हुई।

जैसे ही स्वामी जी ने योगिराज की कुटिया का द्वार खोला, वैसे ही योगिराज ने पूछा—"कौन ?"

उत्तर में दयानन्द सरस्वती ने कहा—"मैं कौन हूँ यही जानने के लिए तो मैं आपकी शरण में आया हूँ।"

उत्तर से विराजानन्द बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने दयानन्द को अपना शिष्य बना लिया। ढाई वर्ष तक गुरुदेव के चरणों में रह दयानन्द ने प्रकाण्ड पांडित्य उपार्जन किया।

दीक्षा के बाद गुरु जी ने गुरु-दक्षिणा के रूप में दयानन्द से मांग की कि वे समाज का उद्धार करें, भारत में घुसे हुए मत-मतान्तरों तथा कुरीतियों को मिटायें, वैदिक धर्म का झण्डा ऊंचा करें।

स्वामी दयानन्द ने गुरु-दक्षिणा देने का वचन दिया और योगिराज से आशीर्वाद लेकर कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े। वैदिक सभ्यता की पताका लेकर वे आगे बढ़े। उनकी आँखों में सूर्य का प्रकाश था, भाल पर विद्वत्ता की किरणें फैली हुई थीं, हृदय में ईश्वर विराजमान था, उनमें त्याग और तपस्या की शक्ति थी और ब्रह्मचर्य का अपार बल था।

चालीस वर्ष की अवस्था में इस प्रबल ब्रह्मचारी ने अपने क्रान्ति घोष से भारत भर को जगा डाला। कण-कण में इनकी ख्याति बोलने लगी। इनके व्याख्यानों में जागरण, ज्ञान और सच्चाई की पुकार थी। इनके पास ज्ञान का अपार भण्डार था। बड़े-बड़े विद्वान इनसे तर्क में परास्त हो जाते थे।

स्वामी जी ने पाखण्डों को मिटाने के लिए दावानल जैसा काम किया। उन्होंने पाखण्ड खण्डनी सभा बनाई और वैदिक धर्म का प्रतिपादन किया, हरिजन उद्धार की घोषणा की। विधर्मी होने वाले हिन्दुओं को गले से लगाकर उन्हें विधर्मी बनने से रोका। धीरे-धीरे दयानन्द सरस्वती सारे भारत के

प्रकाशपुंज हो गये। बड़े बड़े राजा महाराजा स्वामी जी की सेवा में आने लगे। महाराजा बड़ौदा, महाराजा जोधपुर जैसे भी स्वामी जी के भक्त थे।

एक बार जोधपुर महाराज यशवन्तसिंह ने स्वामी जी का बड़ा स्वागत किया, यहाँ तक कि उनके सामने आसन तक पर नहीं बैठे। राजा की ऐसी श्रद्धा से स्वामी जी को उनसे स्नेह हो गया। नरेश यशवन्तसिंह 'नन्हीं जान' नामक एक वेश्या से प्रेम करते थे। स्वामी जी को इस रहस्य का पता चल गया, उन्होंने राजा को फटकारा। 'नन्हीं जान' को भी इस बात का पता चल गया कि स्वामी जी मुझ से राजा को छीनने आये हैं; अतः वह धधक उठी।

उस वेश्या ने अपने शत्रु स्वामी जी से प्रतिशोध लेने का कुचक्र रचा। उसने एक सेवक रसोइये जगन्नाथ को बहुत-सा धन देकर स्वामी जी के दूध में विष मिलवा दिया। विष मिला दूध पीने से स्वामी जी को वमन तथा दस्त हो गये। पर क्षमावतार स्वामी जी ने भेद जानकर भी जगन्नाथ को क्षमा कर दिया। उन्होंने जगन्नाथ से कहा—'तू जोधपुर राज्य से चला जा, नहीं तो यहाँ तेरी बोटी-बोटी काट डाली जायगी।' यही नहीं स्वामी जी ने उसे कुछ रुपये भी दिला दिये। और इस प्रकार स्वामी जी का वह हत्यारा उनकी क्षमा से बच निकला। आश्चर्य है कि अन्याय के उस क्रान्तिकारी विरोधी ने एक हत्यारे को क्षमा क्यों कर दिया ?

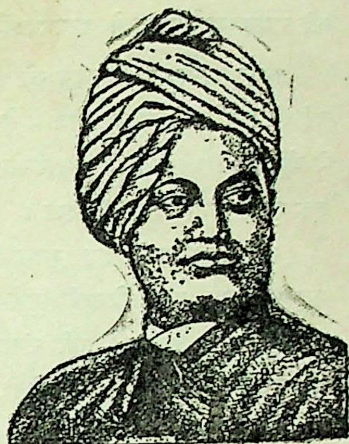
स्वामी जी के रोम-रोम में विष रम चुका था। वे चिकित्सा के लिये आबू पर्वत चले गये पर वहाँ भी उनका स्वास्थ्य न सुधरा और अन्त में सम्वत् १९४० कार्तिक कृष्णा अमावस्या दीपमालिका के दिन अजमेर में देह छोड़ ब्रह्म में लीन हो गये।

वैदिक सभ्यता का वह अमर प्रकाश आत्मस्वरूप ईश्वर में मिल गया। किन्तु स्वामी जी आज भी भारत के घर-घर में विद्यमान हैं, नगर-नगर

और गाँव गाँव में खड़े आर्य समाज मन्दिर उनके गीत गा रहे हैं। उनकी आत्मा उनके 'सत्यार्थ प्रकाश' में बोल रही है। उनके चरण चिन्ह उनके क्रिया-क्षेत्रों में हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के अक्षर-अक्षर में उनकी तस्वीर है।

ईमानदारी से देखें तो स्वतन्त्रता संग्राम के महान् सेनानी दयानन्द सरस्वती ही थे, जिन्होंने भारतीय में चिपटी हुई कालख को अपनी ज्योति उज्जवल किया। आज सारा देश महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रकाश से प्रकाशमान है।

यदि सुन सकते हो तो! 'सत्यार्थ प्रकाश' स्वामी जी की आवाज में तुम्हें पुकार रहा है वह तुम्हें सत्य तक ले जाने को उतावला है, चलो उस ज्योति के सहारे सत्य स्वरूप हो जायें।



स्वामी विवेकानन्द

जब भारतीय संस्कृति के सूर्य पर विदेशी सिन्धुओं से उठ-उठ कर बादल घिरते जा रहे थे, जब भारतीय सभ्यता पर चारों ओर से आँधियां मँडरा रही थीं, जब सारे देश में कुरीतियों की कीचड़ फैलती जा रही थी, जब भारत माता बंधनों में पड़ी सिसक रही थी, तब काली के मन्दिर में एक पुजारी शक्ति की आराधना कर-कर के उसे जगा रहा था और कह रहा था—"बचाओ माँ ! भारत की डूबती हुई संस्कृति को बचाओ !"

ये पुजारी रामकृष्ण परमहंस थे। रामकृष्ण जी ने अपनी पूजा से यह प्रमाणित कर दिया कि मूर्तिपूजा द्वारा आत्मज्ञान सर्वज्ञान और सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। रामकृष्ण कलकत्ता की रानी रासमणि के मन्दिर के पुजारी थे। काली घाट पर बने उनके काली मन्दिर में वे अपनी पत्नी के साथ संयम से रहते थे और तन्मय होकर माँ काली की पूजा करते थे। परमात्मा की आदि शक्ति महामाया जगदम्बिका को काली के रूप में पूज कर

श्री रामकृष्ण परब्रह्म के परमपद को प्राप्त हो गये थे ।

किन्तु रामकृष्ण के हृदय को शान्ति न थी, उनके हृदय में क्रान्ति मची हुई थी । वे एक सूर्य की खोज में थे जो सारे संसार को रोशनी दे । एक दिन वे जैसे ही काली माँ की पूजा करके उठे वैसे ही उनके सामने नरेन्द्र नाम का एक युवक खड़ा दिखलाई दिया ।

श्री रामकृष्ण ने इस युवक को छाती से चिपटा लिया और रोते हुए कह—"मिल गया जिसकी मुझे तलाश थी वह मिल गया । तुम भारतीय संस्कृति का उद्धार करो, सारे संसार को भारत की अमर आत्मा की ज्योति दो, तुम्हारी माँ तुम्हें पुकार रही है, उसे अपनी आवाज से धीरज दो । बस अब तुम माँ को छोड़कर कभी न जाना ।"

रामकृष्ण के इस विचित्र प्रलाप से घबरा कर नरेन मन्दिर से चला गया । यही युवक इतिहास-प्रसिद्ध विवेकानन्द हुआ ।

नरेन्द्र या नरेन कायस्थ जाति के थे । इनका जन्म ९ जनवरी १८६२ को हुआ था । इनके पिता ईसाई धर्म तथा पश्चिमी सभ्यता के भक्त थे । बाईबिल के प्रति उनका बड़ा विश्वास था । वे उसे धर्म की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानते थे । नरेन को भी वे पश्चिमी रंग में रंग रहे थे ।

जब नरेन कलकत्ते के क्रिश्चियन कालेज से बी० ए० करके निकले उनके मन में विकल्प चल रहा था । मन कहता था कि ईश्वर नहीं है तथा तर्क कहता है कि ईश्वर है । नरेन की यह ऐसी अवस्था थी, जब वे कितनी ही विचारों के हिंडोलों पर झूल रहे थे । वे खिलाड़ी थे, तैराक थे, खूबसूरत थे, घुड़सवार थे, गाने-बजाने के शौकीन थे, मुलायम रेशमी कपड़े पहनते थे, गीतों को बड़े स्वर से गाया करते थे, और भी उनके उमंग भरे हृदय में कितने ही हाव-भाव और चाव उछलते रहते थे ।

इस नौजवान के सामने एक ओर जवानी भरी दुनिया थी, धनोपाजन एवं ऐशोआराम से जिन्दगी बिताने की भावना थी तथा दूसरी ओर ऐसा स्वप्न था कि दुनिया का सब कुछ साधु-जीवन में ही है, भौतिक सुखों की अपेक्षा आध्यात्मिक सुखों में आनन्द है, वह सबसे महान् है जो प्राणिमात्र के कल्याण के लिये तप कर रहा है।

आखिर नरेन्द्र को सांसारिक इन्द्रपुरी का वैभव और अप्सरायें न भाईं। वह सब कुछ छोड़कर सत्य की खोज में घर से निकल पड़े। इधर-उधर भटके पर कहीं शान्ति न मिली। अन्ततोगत्वा एक दिन वे काली मन्दिर में सिद्ध फकीर रामकृष्ण जी के पास फिर जा पहुँचे और रामकृष्ण को संसार की सेवा के लिए जिसकी खोज थी वह महाकाली की कृपा से मिल गया।

भक्तराज रामकृष्ण परमहंस के चरणों में नरेन्द्र का मस्तक झुक गया। उन्होंने स्वयं को गुरु के चरणों में अर्पण कर दिया। रामकृष्ण की कृपा से उनका नाम नरेन्द्र से बदल कर स्वामी विवेकानन्द हो गया। वियेकानन्द को बनाने में सबसे बड़ा हाथ रामकृष्ण का है। विवेकानन्द ने उनके बारे में कहा है—"संसार में यदि दार्शनिकता के बारे में कुछ भी कहा है तो उसका श्रेय स्वामी रामकृष्ण जी परमहंस को है। धर्म अनुभूति की वस्तु है तर्क की नहीं।"

१५ अगस्त १८८६ में श्री रामकृष्ण जी की इहलोक लीला संवरण हुई। गुरुदेव की चिता की राख की शपथ लेकर विवेकानन्द ने उनके संकल्प को पूरा करने का व्रत लिया, तथा कई वर्ष तक चारों ओर घूम-घूमकर अपने ज्ञान को बढ़ाया और आत्मशक्ति का विकास किया।

जब वे सब प्रकार से सिद्ध हो गये तो १८९२ में प्रतिज्ञा के अनुसार समाज में भीषण क्रान्ति की तरह टूट पड़े। उनकी वाणी से निकलती हुई

किरणों ने सबको चमत्कृत कर दिया। भारतवर्ष में डंका बजाते हुए वे हिन्दू धर्म के प्रकाश से पश्चिमी सभ्यता वालों को जगमगाने के लिये बम्बई से जापान होते हुए संयुक्तराज्य अमेरिका पहुँचे। १८९३ में अमेरिका में धर्मों की महासभा (Parliament of Religious) हो रही थी। विवेकानन्द उसमें शामिल होने के लिए ही अमेरिका गये थे। पर न तो उनके पास धन था और न किसी से परिचय। उस सभा में हिन्दू धर्म जैसे साधारण आधार के नाम पर उन्हें कोई सभा में शामिल करने के लिए तैयार न था। लेकिन विवेकानन्द में लगन थी और आत्मविश्वास था। किसी न किसी प्रकार भारत के उस सूर्य को सभा में बोलने का अधिकार मिल ही गया।

हिन्दू धर्म की महानता पर जब विवेकानन्द सभा में बोले तो श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो गये। उनके व्याख्यान के सामने और सारे व्याख्यान फीके पड़ गये। अमेरिकनों के हृदय में हिन्दू धर्म की महानता और भारतीय संस्कृति की धाक बैठ गई।

विवेकानन्द पहले भारतीय, विद्वान् और तपस्वी थे जिनके चरणों की छाप आज भी अमेरिका की धरती पर चमक रही है। अमेरिका में इनका उस समय वही स्वागत हुआ जो कालान्तर से आज पंडित जवाहरलाल नेहरू का हुआ है।

विवेकानन्द इंगलैंड और स्विटजरलैंड आदि भी गये। उनका व्यक्तित्व इतना सौम्य था कि जो भी उन्हें देखता और उनकी वाणी सुनता वह उन पर भौंरे की तरह मंडराने लगता। इंगलैंड में भी उन्होंने प्रवचन किये। वहाँ की एक देवी ने भगवान कृष्ण के बारे में शंका करते हुये प्रश्न कर दिया कि "क्या आपके कृष्ण ऐसे थे कि उनके पीछे कितनी ही गोपियाँ नाचती फिरती थीं?"

विवेकानन्द ने मुस्कराते हुये कहा कि "तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर हम कल देंगे।"

और फिर दूसरे दिन वे विलायती महिलाओं के मध्य प्रवचन कर रहे थे तो महिलाएँ ऐसी मुग्ध थीं, जैसे बीन पर नागिनें मुग्ध होती हैं। जब उनका प्रवचन पराकाष्ठा पर था तो वे बीच ही में उठ कर भाग लिये।

विवेकानन्द की वाणी का कुछ ऐसा जादू हो गया था कि उनके भागते ही सब महिलाएँ उनके पीछे-पीछे हो लीं। वे जहाँ रुकते महिलाएँ वहीं हाथ बांधकर खड़ी हो जातीं, जब फिर वे चलते तो महिलाएँ भी चल पड़तीं।

विलायती महिलाओं को इतनी खोई हुई दशा में देख विवेकानन्द ने कहा—"कल हमसे एक देवी ने प्रश्न किया था कि क्या तुम्हारे कृष्ण ऐसे थे कि गोपियाँ उनके पीछे-पीछे फिरती थीं? आज वह प्रत्यक्ष देख लें कि भगवान कृष्ण के देश के एक मनुष्य के पीछे कितनी विलायती महिलाएँ सुधबुध भूली हुई हैं।"

इस प्रकार जब विदेशों में भारतीय संस्कृति का अमृत बरसाते हुये वे भारत आये तो भारतीयों ने बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया। हिन्दू धर्म की महानता का प्रकाश फैलाने वाले उस सूर्य के दर्शनार्थ भारतीयों की भीड़ की भीड़ घिर आई।

कलकत्ता आकर विवेकानन्द ने रामकृष्ण सेवामन्त्र को व्यापक रूप से क्रियात्मक रूप से लाने के लिये 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। कितने ही संन्यासी उसमें शामिल हो गये। आज भी भारत के कोने-कोने में 'रामकृष्ण मिशन' की शाखाएँ हैं, जो रोगी, भूखे और अपाहिजों की सेवा करती हैं। 'रामकृष्ण मिशन' का पहला आश्रम कलकत्ता के निकट बेलूर में तथा दूसरा अल्मोड़ा जिले के मायावती नामक स्थान पर खुला।

विवेकानन्द वीर, कर्मठ, विद्वान् और तपस्वी थे। वे जीवन भर देश और धर्म के लिए तपस्या करते रहे। क्षणभंगुर जीवन का उद्देश्य यही तो है कि मानव का कल्याण करे और वे प्राणीमात्र का कल्याण करते-करते ही चालीस वर्ष की भरी जवानी में ही इस संसार से विदा हो गये।

पता नहीं सत्यं, शिवं और सुन्दरं का वह मूर्त रूप आज कहाँ है? धरती विवेकानन्द के गीत गा रही है और गाती रहेगी।



रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वह इतना सुन्दर था कि बड़े-बड़े विद्वान् उसे लड़के के वेश में लड़की समझते थे। वह बतना व्यापक था कि उसमें सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ अनुभव हुआ। वह इतना प्रकाशमान था कि सूर्य तो रवि ही रह गये और वह रवीन्द्र कहलाया। 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' के अनुसार रवीन्द्र मानो बचपन में ही सत्यं, शिवं और सुन्दरम् के संगम थे। जो उन्हें देखता था बस देखता ही रह जाता था। जिस पर उनकी किरणें पड़ जाती थीं वह आनन्दमय हो जाता था।

कवीन्द्र रवीन्द्र का जन्म सन् १८५७ के विप्लव के ठीक चार वर्ष बाद ६ मई सन् १८६१ को हुआ था। इनके पिता महामना देवेन्द्रनाथ ठाकुर बड़े विद्वान् और बंगाल के एक बहुत बड़े जमींदार थे। देवेन्द्रनाथ के सभी पुत्र होनहार थे। उनके सबसे बड़े पुत्र आई० सी० एस० पास थे तथा दूसरे भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर दार्शनिक थे। ज्योतिन्द्रनाथ बड़े कलाकार थे। इसी प्रकार

परिवार में कोई चित्रकार था तो कोई श्रेष्ठ गायक, कोई लेखक था तो कोई पण्डित। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि देवेन्द्रनाथ के बगीचे में बहार ग्रा रही थी।

कवीन्द्र रवीन्द्र बचपन से ही स्वतन्त्र विचारों के थे। बाल्यकाल से ही उनमें मौलिकता थी। सड़ी हुई शिक्षा प्रणाली उन्हें ग्रखरती थी। ग्रतः वे जहाँ भी पढ़ने गये वहीं स्कूल छोड़ कर भागे।

पिता रवीन्द्र को बहुत प्यार करते थे। सम्पन्न परिवार में रवीन्द्र का लालन-पालन हो रहा था। लाडला बेटा होने के कारण रवीन्द्र की खूब चलती थी। जब पढ़ने में उनका मन नहीं लगा तब उन्हें कुछ दिन इंगलैंड के ब्राइटन स्कूल में रखा गया, तदनन्तर उनकी शिक्षा लन्दन के यूनिवर्सिटी कालिज में हुई।

इस यूनिवर्सिटी में रवीन्द्र का ग्रध्यापकों पर ग्राशातीत प्रभाव पड़ा। रवीन्द्र की बुद्धि से वे चमत्कृत हो उठे। सहपाठियों में उनकी प्रशंसा होने लगी। उनके एक ग्रंग्रेजी लेख पर प्रोफेसरों में चर्चा चलने लघी। एक दिन एक प्रोफेसर ने इनके एक लेख की प्रशंसा करते हुये कहा कि किसी दिन रवीन्द्र विश्व का सबसे बड़ा लेखक होगा, मानो वह ईश्वर की भविष्य-वाणी थी।

रवीन्द्र के संस्कारों में ग्रार्ष विचार समाये हुये थे। उनकी धतिभा जन्म-जन्म के तपों का प्रकाश थी। उनका हृदय बहुत ही कोमल ग्रौर शुद्ध था। कहा जाता है कि उन्हें ईश्वरीय प्रेरणा थी।

यह सब था, किन्तु यह दुनिया बड़ी भयंकर है। यहाँ पूजा तब होती है जब कोई चमत्कार दिखा दिया जाता है। कहावत प्रसिद्ध है कि "घर का योगी जोगिया, ग्रान गाँव का सिद्ध।"

कवि रवीन्द्र को काफी साधना होने पर भी अपने देश में वह ख्याति नहीं मिली जो उनको गीतांजलि पर "नोबेल पुरस्कार" मिलने के बाद विदेशों द्वारा मिली। भारत ने रवीन्द्र को तब पहचाना जब विदेशों ने एक लाख रुपये से उनकी अर्चना कर दी।

जो महान् होता है उसके जीवन का संघर्ष भी महान् होता है। रवि बाबू का जीवन बड़े संघर्षों और दुखों में बीता। साधक की साधना आग में तप कर ही चमकती है। ईश्वर उसे सुख दिखाकर दुःख देता है। रवीन्द्र का विवाह मृणालिनी नामक एक सुन्दर और सुशील कन्या से हुआ था। उनके साथ रवि बाबू का जीवन बड़ा सरस रहा, पर १६०२ में उन पर विपत्तियों के पहाड़ टूटने लगे। उनकी परम प्रिया पत्नी मृणालिनी का देहान्त हो गया, उनकी लड़की का शरीर पूरा हुआ और फिर इनके साधु पिता देवेन्द्रनाथ भी स्वर्ग चले गये। यही नहीं, सन् १६०७ में इनके प्रथम पुत्र की मृत्यु हो गई।

कवि की ये वेदनायें, विरह और मर्म भरी भावनायें केवल आँसुओं में ही नहीं बहीं, अपितु 'स्मरण' और 'खेया' नाम के कविता-संग्रह में फूट पड़ी हैं। और भी जीवन की जो अनुभूतियाँ उनको हुईं वे संसार की अमूल्य निधियाँ हैं। उनकी परीक्षा के लिये एक से एक कठिनाई आई पर वे साहस से सब पर जय पाते चले गये। चित्रा, चित्रांगदा तथा बलिदान के यशस्वी लेखक को किसी भी प्रकार की परीक्षा ने विचलित नहीं किया।

कवीन्द्र रवीन्द्र की सर्वप्रथम रचना उनकी सोलह वर्ष की अवस्था में १८७८ में प्रकाशित हुई थी। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'गोरा' जिसमें समाज की समस्याओं, भारतीय दर्शन तथा आत्मा की अमरता के साथ पूर्व और पश्चिम की सभ्यता का मेल भी है, एक गौरव ग्रन्थ है। उनकी "नौका डूबी" कृति भी एक अनमोल पुस्तक है। "गीतांजलि" तो उनकी विश्व-ख्याति की अनमोल निधि है ही।

कवीन्द्र की साधना साधारण से लेकर असाधारण तक लिये सुलभ है। उनके गीत जहाँ बड़े-बड़े विद्वान् और पंडितों में गाये जाते हैं, वहाँ बंगाल में नौका खेने वाले मल्लाह, पौधे लगाने वाले माली, बोझा ढोने वाले मजदूर, खेती करने वाले किसान आदि भी तन्मय होकर सस्वर गाते हैं। उनके गीतों में व्यक्तिगत अनुभूति, समिष्ट की अन्तश्चेतना हो गई है, मानो वे जन-जन के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति के हर कण को तथा हर मानव के हृदय को गहराई से पढ़ा है।

और यह सत्य भी है। कवीन्द्र खुली आँखों से सारी सृष्टि में घूमे, गाँव-गाँव और शहर-शहर का पानी पिया, भारत ही नहीं विदेशों में भी बार-बार गये। उन्होंने हर वस्तु को अपनी नजर से पढ़ा, हर व्यक्ति को अपनी कसौटी पर परखा और फिर अपनी वाणी के रस से उसे घोल दिया।

रवि बाबू प्रकृति की गोद में खेलने वाले एक अद्भुत प्राणी थे। मानो हवा के पंखों पर बैठ सूर्य की किरणों के तार पकड़ सारी नैसर्गिक फुलवारियों में भ्रमण करते रहे। उनकी रचनाओं में मौन प्रकृति मुखर हो उठी है, कहा नहीं जा सकता कि रवि बाबू के मुँह से प्रकृति बोल रही है, अथवा प्रकृति के मुँह से रवि बाबू बोल रहे हैं।

काव्य और कीर्ति तपस्या के प्रसाद से मिलती है। जिसका जीवन तपा है, वही कुन्दन बनकर दमकता है। रवीन्द्र केवल कहने वाले कवि ही नहीं थे, बल्कि जो कुछ उन्होंने कहा वह उनकी स्वानुभूति थी। वे उन परिस्थितियों के एक पात्र रहे जिन परिस्थितियों से साहित्य फूटता है।

रवि बाबू कवीन्द्र होने के साथ-साथ राजनीतिक जागृति के प्रतीक भी थे। जब बंगाल में राजनीतिक जागृति का शंख घोष हुआ तो रवि बाबू भी प्रचण्ड सूर्य की तरह तेजवन्त हो उठे। जब लार्ड कर्जन बंगाल के दो टुकड़े

करना चाहते थे, तो रवीन्द्र एकता के लिये लड़े। वे विश्व-बन्धुत्व के लिये जी जान से यत्न करते रहे।

बंग भंग का विषाद मानो उनमें साकार हो उठा था। उनकी आत्मा में सारे संसार का प्रेम आकर एक स्वर से कह रहा था, 'मानवता के लिये जिओ और मानवता के लिए मरो।' जब जापान ने चीन पर हमला किया तो उन्होंने कविता लिखी। उनकी उस कविता में जैसे आँसू बोल रहे हैं।

रवीन्द्र सच्चे देश-भक्त थे। भारतवर्ष से उन्हें अपार प्रेम था। मातृ-भूमि उनके लिये सबसे बड़ी आराध्या थी। उनकी लेखनी से निकले देश भक्ति के गीत नवयुवकों में प्राण फूँकने के लिये अग्नि के सदृश हैं। वे राजनीतिक थे, उन्होंने देश को जगाया पर दलबन्दी की दलदल में फँस कर नहीं अपितु देशभक्ति के गीतों की नाव पर वे डूबतों को तैरा कर ले गये। देश की वह ऐसी दशा थी कि जब हम अंग्रेजों के दास होने के साथ-साथ धार्मिक दुर्दशा के ग्रास भी बने हुए थे। हमारे ऊपर अज्ञान का अंधेरा छाया हुआ था, हम आत्मा और परमात्मा को भूल बैठे थे। तब रवीन्द्र ने अपने प्रकाश में हमें उजाला दिया। उनके नैवेद्य में धार्मिक ज्योति है। "गीतांजलि" में भी धर्म और ज्ञान का अद्भुत रहस्य छिपा है। रवि बाबू के पिता देवेन्द्रनाथ विद्वान् और साधु प्रकृति के थे। उन्होंने अपनी साधना, तपस्या और शान्ति के लिये बोलपुर में एक कुटिया बना रक्खी थी। रवीन्द्र जब दुनिया की विचित्रता से उत्पीड़ित हो उठे तो वे कुछ समय के लिये बोलपुर में उसी कुटिया पर चले गये। वे वहाँ चार पाँच वर्ष तक रहे और आज वही कुटिया 'शान्ति निकेतन' नाम से संसार की सबसे आर्ष और आदर्श संस्था है। आज 'विश्व भारती' नाम से 'शांति निकेतन' संसार का सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय है। बड़े-बड़े विद्वान यहाँ प्रवास करते हैं, अध्ययन और शिक्षा का लाभ उठाते हैं। महात्मा गाँधी जी आत्म-शांति

के लिये यहाँ रहे। शान्ति निकेतन के आचार्य पद पर वर्षों तक प्रसिद्ध अंग्रेज साधु एन्ड्रूज शोभायमान हुए। इनका स्मारक वहाँ आज भी इनके गीत गा रहा है। बड़े-बड़े अद्भुत विद्वान इस संस्था के प्रकाश से प्रकाशवान हैं।

कल की वह छोटी सी कुटिया, जिसमें भारतीय बालक तथा बालिकाओं को गुरुकुल की प्रथानुसार शिक्षा दी जाती थी, आज शिक्षा का सूर्य बन सारे संसार को रोशनी दे रही है। सन् १९११ में कवीन्द्र रवीन्द्र के जीवन के ५० वर्ष पूरे हुए। बंगाल भर में उनकी जयन्ती मनाई गई। बस फिर तो ये चमकते ही चले गये। १९१२ में ये लन्दन पहुँचे, वहाँ धुरन्धर विद्वानों और साहित्यकारों से इनमा निकट परिचय हुआ।

१९१३ में अमेरिका होते हुए शान्ति निकेतन आये और इसी वर्ष इनको एक लाख रुपये का विश्व का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार "नोबल प्राइज" मिला। यह एक लाख रुपया रवि बाबू ने शान्ति निकेतन को दे दिया। इसी वर्ष इनको कलकत्ता विश्वविद्यालय ने "डॉक्टर ऑफ लिटरेचर" की उपाधि से सम्मानित किया और फिर एक वर्ष बाद ब्रिटिश सरकार ने इनको "सर" का खिताब दिया। आये दिन देश और विदेशों में इनके गौरव गीत गाये जाने लगे। आज ये जापान में राष्ट्रवाद पर व्याख्यान दे रहे हैं तो कल अमेरिका में व्यक्तित्व पर बोल रहे हैं। सन् १९२० से १९३० के बीच में इनको कम से कम सात बार विशिष्ट व्याख्यानों के लिये योरोप यात्रा करनी पड़ी।

इस युग के दो आचार्य भारतवर्ष में हुए। एक महात्मा गाँधी और दूसरे गुरुदेव कवीन्द्र। गाँधी जी तभी से महात्मा गाँधी कहलाये जाते हैं जब से उनको रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'महात्मा' कहकर सम्बोधित किया था और रवि बाबू तभी से गुरुदेव कहलाते हैं जब से गाँधी जी ने उन्हें 'गुरु' कहा।

बहुत से स्थानों पर दोनों का मतभेद था पर दोनों ही के हृदय में आग थी, पीड़ित के लिये दोनों ही के हृदय छटपटाते थे। देश की दुर्दशा से दोनों ही दुखी थे। दोनों ही जीवन भर कल्याण के लिये अगरबत्ती की तरह जलते रहे।

रवीन्द्र ने आजादी के लिये कितने ही त्याग किये। 'सर' का खिताब वापिस कर दिया। राष्ट्रीय जीवन अपना कर राष्ट्रीयता का सन्देश दिया। उन्होंने अपने जीवन से मृत्यु-लोक के कण-कण में जीवन जगाया, और फिर जग को जगाते-जगाते सन् १९४१ में वे चिर-निद्रा में खो गये।

किन्तु कौन कह सकता है कि कवीन्द्र रवीन्द्र हमारे मध्य नहीं। बोल को ही प्राण कहते हैं, शब्द ही जीवन है। रवि बाबू के बोल आज भी हम सुन सकते हैं। हो सकता है जिस प्रकार महात्मा कबीर मौन होकर रवि बाबू के मुख से मुखर हो उठे थे कल फिर कोई ऐसी आवाज सुनाई दे जिसमें से रवीन्द्र की आवाज आती हो। धरती नई देह में नया रवीन्द्र चाहती है।



मदनमोहन मालवीय

भारतीय संस्कृति, शिक्षा और धर्म की नयी दीवारों पर एक चित्र झलकता है। श्वेत वस्त्र, भोली मुखाकृति, उन्नत ललाट, उदार दृष्टि और उज्ज्वल हृदय से कोई कण-कण में बोल रहा है। उस चित्र में इतिहास भी है और दर्शन भी, उसमें साहित्य भी है और संस्कृति भी, उसमें धर्म भी है और शिक्षा भी, उसमें व्यक्ति भी है और समाज भी, उसमें क्रान्ति भी है और शान्ति भी।

यह चित्र पूज्यपाद महामना मालवीय जी का है, जिनका चित्र और चरित्र सूरज की तरह प्रकाश देता है, जिनके जीवन का इतिहास हमारे लिये दर्शन है, जो हिन्दुत्व के प्राण थे, जो भारत की आत्मा थे।

मालवीय जी का जन्म २५ दिसम्बर सन् १८६१ को तीर्थराज प्रयाग में हुआ। वहीं पर इन्होंने शिक्षा पाई, 'म्योर सेन्ट्रल कालिज' से इन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की, तथा १८८७ तक सरकारी हाई स्कूल में अध्यापन किया।

१८९१ में इन्होंने वकालत पास की तथा १८९३ से ये इलाहाबाद हाई कोर्ट में वकालत करने लगे।

पर मालवीय जी को तो भगवान् ने देश की वकालत के लिये भेजा था। थोड़े ही दिन बाद उन्होंने हाई कोर्ट की वकालत से छुट्टी ले ली और भारत माता की वकालत शुरू कर दी। लोकप्रियता और लोकसेवाओं के फलस्वरूप वे सन् १९०२ में संयुक्त प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य हुए एवं १९१२ तक वे बराबर इसी स्थान को सुशोभित करते रहे। इसके बाद वे वायसराय की इम्पीरियल कौंसिल के सदस्य हुये तथा १९१९ तक उसी पद पर बने रहे।

लेकिन जब देश में आजादी की आग सुलगती हो तो गुलामी की सोने-मढ़ी कुर्सी पर बैठना वे कैसे सहन कर सकते थे। मालवीय जी अंग्रेजों की अनीति देख धधक उठे। जब रौलट एक्ट भारत के सर पर आया तो वे कौंसिल की सदस्यता छोड़ जन-मंच पर आ गये। रौलट एक्ट के विरोध में उन्होंने अंग्रेजों को कड़ी चुनौती दी।

सन् १९२६ में ही वे फिर लेजिस्लेटिव- कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए और इसी समय पं० मोतीलाल नेहरू अपनी स्वराज्य पार्टी सहित कौंसिल में पधारे। नेशनल पार्टी का जन्म हुआ, मालवीय जी उसके प्राण रहे। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी के सहयोगी थे। कांग्रेस के २३वें दिल्ली अधिवेशन के अध्यक्ष पद पर मालवीय जी को सुशोभित किया गया। इस प्रकार मालवीय जी की जीवन तालिका अनेकों सम्मानपूर्ण पदों से भरी पड़ी है।

मालवीय जी संस्कृति, संस्कृत और साहित्य के प्राण थे, हिन्दू विश्व-विद्यालय इसका जीता जागता प्रमाण है जो युगों तक ज्योति दान करता

रहेगा ।

श्रद्धेय साधु ने 'हिन्दुस्तान' तथा 'इण्डियन यूनियन' नामक पत्रों का सम्पादन भी किया। आप प्रसिद्ध 'लीडर' पत्र के संस्थापकों में से हैं। तात्पर्य यह है कि मालवीय जी पत्रकार, साहित्यकार, नीतिकार आदि सभी कुछ थे।

मालवीय जी कट्टर सनातनधर्मी थे, ऐसे सनातनधर्मी जो कि विलायत जाने पर हाथ धोने की मिट्टी भी अपने साथ हिन्दुस्तान से ले गये थे। मूर्ति-पूजा को ये मानव के लिये शिवम् मानते थे। वर्ण-व्यवस्था के लिये उनमें विचार स्वातन्त्र्य था या यह भी कह सकते हैं कि समय को आप ज्योति देना चाहते थे। द्वितीय गोलमेज सभा में जब आप विलायत गये तो वहाँ उन्होंने हिन्दू धर्म का खूब प्रचार किया। वहाँ रहते हुये उन्होंते अपने धर्म का पूरा-पूरा निर्वाह किया। कई दिन तक निराहार रहे, खाली दूध और गंगाजल पिया, पर कोई विलायती खाना नहीं खाया, शुद्ध एवं सात्विक रहे। हम उन्हें वहाँ दूसरे गाँधी के रूप में देखते हैं।

मालवीय जी जितने कट्टर सनातनधर्मी थे उससे कहीं कट्टर वे देशभक्त थे। उनका धर्म उनकी देशभक्ति में बाधक कभी नहीं बना, बल्कि हम उनके धर्म को उनकी देशभक्ति में सहायक देखते हैं। वे जीवन में कितनी ही बार जेल गये, इनके धीरज और धर्म की यातनायें बार-बार परीक्षा लेकर हार गईं, बुढ़ापे तक में वे देश के लिये बन्दी बने, काँग्रेस से बार-बार मतभेद होते हुये भी वे संकट काल में सदा उसके साथ रहे। वे एक सच्चे धर्मात्मा थे तो एक शुद्ध एवं वीर कांग्रेसी भी। भारत की सच्ची सेवा करने वाले वे थे जो राजनीतिक जंजीरों के साथ-साथ विधर्मियों की कुसंस्कृति की जंजीरें भी तोड़ते रहे।

कौनसा ऐसा क्षेत्र और कौनसी ऐसी दिशा है जहाँ मालवीय जी के चरण चिन्ह नहीं हैं? हिन्दी उनकी सेवाओं से गौरवान्वित है, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वे अध्यक्ष रहे। ऐसे महात्माओं की सेवाओं के फलस्वरूप ही हिन्दी आज जन-जन की राष्ट्र एवं राजभाषा है।

मालवीय जी भिखारी के भिखारी थे, अर्थात् वे देश के भिक्षुक थे। दुखियों के लिये, अशिक्षितों के लिये, गुलामी को दूर करने के लिये उन्होंने द्वार-द्वार पर हाथ फैलाया, स्वयम् चाहे भूखे रहते पर भूखों के लिये अन्न माँगते फिरते थे। देश के हर सद्कार्य के लिये वे झोली लिये फिरते थे। क्या सनातन धर्म, क्या गोरक्षा, क्या भूकम्प या अकाल-पीड़ित, सबकी पीड़ा उनकी पीड़ा बन जाती थी, और देश का यह दाता भिक्षुक को दान करता रहता था। इस महापुरुष ने दूसरों की आँखों के आँसू अपनी आँखों में भर लिये।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय इस भिखारी के फैले हुये हाथ पर ही खड़ा है, जो भारत नहीं एशिया का प्रखर प्रकाश है, जिसकी एक-एक ईंट पर मालवीय जी का यश लिखा हुआ है। इनकी उज्ज्वल कीर्ति अमर है। जीवन की कठोरता से संघर्ष करता हुआ यह दीपक तूफानों में भी जलता रहा।

मालवीय जी प्रकाण्ड विद्वान थे। वे जब बोलते थे तो लगता था मानो सद्ग्रंथ पढ़ा जा रहा है। उनके व्याख्यानों से श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे। संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी पर आपका समान अधिकार था। श्रीमती एनी बेसेंट की मृत्यु के बाद विश्वख्याति के व्याख्यानदाताओं में मालवीय जी मुख्य थे।

उनकी वाणी में बड़ा ओज था। सभाओं में, विद्यालयों में, न्यायालयों में तथा राज्यपरिषदों में जब वे भाषण देते थे तो सभा में नई चेतना आ जाती थी, विद्यार्थियों में सरस्वती बोलने लगती थी, न्यायाधीशों की कलम न्याय के लिये विवश हो जाती थी और राज्यपरिषदों में भारतीयता जय पा जाती थी।

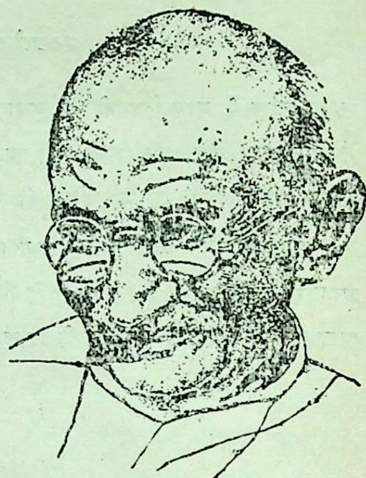
मालवीय जी बड़े परोपकारी थे, जैसे वे इस बात की प्रतीक्षा में रहते थे कि कब उपकार करने का शुभ अवसर मिले। रात हो या दिन, धूप हो या पानी, वे हर समय पर सेवा के लिये तत्पर रहते थे। उन्होंने जीवन भर सेवा से मुँह नहीं मोड़ा। बहुत व्यस्त जीवन होते हुये भी वे साधारण से साधारण आदमी की पुकार पर दौड़ पड़ते थे। शायद ही किसी को ऐसी शिकायत हो कि अमुक समय मालवीय जी ने हम से मिलने से इन्कार कर दिया। इतना कोमल, इतना उदार, और इतना तत्पर आज के इतिहास में दूसरा नहीं दीखता।

मानवता मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है। कोई राजा बन सकता है, नेता बन सकता है, विद्वान बन सकता है पर इन्सान बनना आसान नहीं है। यदि कोई सच्चा इन्सान है तो वह देवताओं से भी महान है। मालवीय जी वकील, पण्डित, नेता, सुधारक सब कुछ पीछे थे, वे पहले मनुष्य थे। मानव के साथ मानव का नाता उनका सबसे प्रथम था। पर-पीड़ा को अपनी पीड़ा समझना उनका सबसे बड़ा धर्म था।

इस प्रकार मालवीय जी जीवन भर जन सेवा, धर्म सेवा, देश सेवा और साहित्य सेवा करते रहे। राधेश्याम कथावाचक मालवीय जी के प्रसाद से ही जन-जन तक पहुंच पाये। उन्होंने हर प्रकार से राधेश्याम जी का उत्साहवर्धन किया। आज जो जन-जन में सनातन धर्म की आवाज सुनाई देती है वह उस

मरण काल में मालवीय जी की कृपा से ही जीवित रह सकी। उन आँधियों में सनातन धर्म की नाव को डूबने से बचाने वाला या तो सनातन धर्म की आत्मा का बल था या मालवीय जी की सेवाओं का संजीवन अमृत था।

मालवीय जी आज हमारे मध्य नहीं हैं, पर अपनी स्मृतियों के इतने आकार छोड़ गये हैं कि कभी वे निराकार नहीं हो सकते। जन-जन में उनके शब्द इतने व्यापक हैं कि उनकी आवाज सदा-सदा सोतों को जगाती रहेगी।



महात्मा गांधी

धरती ने आकाश से कहा—'हे तारों के राजा ! तुम अपने चाँद और सूरज पर गर्व करके इतने ऊँचे उठते न चले जाओ कि मनुष्य तुम्हें छू भी न सके, मुझसे सहिष्णु और दानी बनो जिसने अपने वे दो चरण जिनमें चाँद और सूर्य से कहीं अधिक ज्योति थी देवलोक को दान कर दिये ।'

वे दो चरण बापू के चरण थे । वे दो डगमग पग जिधर भी चल पड़ते थे कोटि-कोटि पग उधर ही चल पड़ते थे । वे इतने भले थे कि भले भी उन्हें खा गये । वे फूलों की सुरभि से पतले और यज्ञ की अग्नि से भी अधिक क्रान्तिकारी थे । वे इतने ऊँचे उठे कि देवता उन्हें ऊपर उठाकर ले गये । वे ऐसे आराध्य हुए कि आराधक उनके रक्त को ही अपनी पूजा का अर्घ्य बना बैठे ।

ऐसा महात्मा हमें माँ की तपस्याओं से मिला था । हमारे राष्ट्रपिता मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म परम-पावनी माता पुतलीबाई के उदर से

हुग्रा । माता पुतलीबाई ने कितने ही व्रत करके हमें वह दिव्य पुरुष दिया जो मानव मात्र का दीपक है । चौमासों में सूर्य को देखे बिना भोजन न करने वाली माँ पुतलीबाई ने स्वयं तप-तप कर संसार को महामानव दिया ।

महात्मा गाँधी चाहे ग्रवतार नहीं थे पर वे ऐसे मानव थे जो ग्रवतारों के भी ग्रवतार कहे जा सकते हैं । उनकी जीवनी में, उनके प्रयोगों में ग्रौर उनके विचारों में सब गुरु ग्रादर्श हैं जो किसी भी देवता में हुए हैं, या हो सकते हैं । वे धरती के ऐसे प्रकाश हुये जिनसे कि स्वर्ग को भी उजाला लेना चाहिये ।

वे स्वर्ग के भूमिकरण करने के लिये धरती पर प्रकट हुए ग्रौर भूमि का स्वर्गीकरण करने के लिये निराकार हो गये ।

गाँधी जी का जीवन, प्रयोग ग्रौर विचार भूत को, वर्तमान को ग्रौर भविष्य को रोशनी, दिखाता है । ग्राग्रो उनके जीवन, प्रयोग ग्रौर विचारों के दर्शन करें ।

गाँधी जी का जन्म २ ग्रक्टूबर १८३९ को पोरबन्दर में हुग्रा था । इनकी माता का नाम पूर्वकथित तपस्विनी पुतलीबाई था ग्रौर पिता का नाम करमचन्द, उर्फ काबा गाँधी था ।

इसके ग्रतिरिक्त गाँधी जी के जीवन की तालिका संक्षेप में इस प्रकार है—१८७६ में राजकोट में शिक्षा प्रारम्भ, १८८३ में कस्तूरबा से विवाह, १८८५ में पिता की मृत्यु, १८८७ में मैट्रिक परीक्षा पास, १८८८ में शिक्षा के लिये विलायत प्रस्थान ।

गाँधी जी के जीवन की यहाँ तक की तालिका केवल तिथियों की सूची-मात्र नहीं है, उसमें जीवन के प्रयोग भरे पड़े हैं । जैसे :— सत्य का पालन, कुसंग का खट्टा मीठा ग्रनुभव, पाठशाला में निरीक्षक के ग्राने पर 'केटिल' शब्द न लिखने वाली घटना तथा ग्रौर भी छोटी ग्रायु में विवाहित जीवन के

नमकीन और मिर्चीले अनुभव गाँधी जी के जीवन की इन तिथियों में हैं। गाँधी जी के इन बचपन के इन प्रयोगों से हम सँभल कर रास्ते पर चल सकते हैं।

गाँधी जी इंगलैंड में रहे पर उन्होंने भारतीयता को नहीं छोड़ा, न उन्होंने मांस खाया और न वे किसी अन्य व्यसन में फँसे, ईश्वर की कृपा से वे बाल-बाल बचते चले गये। इंगलैड से १८९१ में जब बैरिस्टर होकर बम्बई आये तब हाय रे काल की करालता ! उनकी आदर्श माता की मृत्यु हो गई। भारत से दो वर्ष बाद वे दक्षिण अफ्रीका गये। अफ्रीका में वे सुप्रीम कोर्ट के एड्वोकेट बने और वहाँ उन्होंने 'नेटाल काग्रेस' का संगठन किया।

१८९९ में उन्होंने बोअर के युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की और फिर १९०१ में भारत आकर कलकत्ता काँग्रेस में शामिल हुये। एक वर्ष बाद वे भारत से पुनः अफ्रीका चले गये। अफ्रीका में गाँधी जी ने बड़े-बड़े कष्ट सहे और बड़े-बड़े काम किये। वहाँ की दासता को मिटाने के लिये उन्होंने महान अहिंसात्मक सत्याग्रह किये। अफ्रीका में गाँधी जी की क्रांति महान ऐतिहासिक क्रान्ति है।

उनका वहाँ का जीवन और प्रयोग सेवा, त्याग, सत्य और परोपकार का प्रयोग है। उन्होंने जुलू विद्रोह में घायलों की सेवा की, महामारी में पड़े हुए प्राणियों को अपने प्राणों को संकट में डाल कर बचाया। और भी अपने सच्चरित्र एवं सद्कर्मों से जो श्रेष्ठ इतिहास गाँधी जी ने विदेशों में स्थापित किया, पठनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

अफ्रीका में अपने गौरवशाली चरण चिन्ह छोड़ १९१५ में गाँधी जी भारत आये। बस यहीं से गाँधी जी की जिन्दगी भारत की बदलती हुई किस्मत की

जिन्दगी है। भारत भ्रमण, चम्पारन सत्याग्रह, गिरमिटया कानून रद्द, असहयोग आन्दोलन, चौरी चौरा कांड, उपवास तथा छः वर्षों की सजा जैसी कितनी ही घटनाएँ और गतियाँ गाँधी जी ने बसन्त के फूलों की तरह धरती पर छोड़ीं।

गाँधी जी जहाँ कांग्रेस के अध्यक्ष, कुशल राजनीतिज्ञ तथा महात्मा थे, वहाँ वे एक कलाकार भी थे 'हरिजन', 'इण्डियन ओपीनियन' आदि पत्रों का उन्होंने सम्पादन किया, संगीत का स्वाद भजनों के द्वारा चखा और चखाया। 'आत्म-कथा' 'बहिनों से' आदि कितनी ही पुस्तकें उन्होंने लिखीं। यही क्या, गाँधी जी साहित्यकार से एक ऐसे व्यापक तेज बन गये जिससे साहित्य जगत में गाँधी युग और गाँधीवाद की नई गंगा बह चली।

गाँधी जी महात्मा, नेता और यदि अतिशयोक्ति न मानी जाये तो अवतारों के गुणों से भी सम्पन्न थे। वे भारत माता की बेड़ियाँ काटने के लिये आये थे, वे दलित का उद्धार करने के लिये अवतीर्ण हुये थे, वे दानव को मानव बनाने के लिये बोले थे, उन्होंने अपना काम किया और चले गये।

वे गये पर स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रतिज्ञा पूरी करके, वे गये पर नमक कानून तोड़ कर, वे गये पर ऐसे ही जैसे डांडी यात्रा करते हुये चले जा रहे हों।

सन् १९४१ में वे व्यक्तिगत सत्याग्रह के रूप में "एकला चलो रे" की उक्ति चरितार्थ करते चले जा रहे थे, १९४२ में समष्टि में व्यष्टि बन कर चले और १९४७ में वे जेल से छूट स्वाधीन होकर भारत के आँगन में ऐसे ही जगमगाये जैसे बनों से लौटकर राम अयोध्या में सुशोभित हुये थे। किन्तु

नमकीन और मिर्चीले अनुभव गाँधी जी के जीवन की इन तिथियों में हैं। गाँधी जी के इन बचपन के इन प्रयोगों से हम सँभल कर रास्ते पर चल सकते हैं।

गाँधी जी इंगलैंड में रहे पर उन्होंने भारतीयता को नहीं छोड़ा, न उन्होंने मांस खाया और न वे किसी अन्य व्यसन में फँसे, ईश्वर की कृपा से वे बाल-बाल बचते चले गये। इंगलैड से १८६१ में जब बैरिस्टर होकर बम्बई आये तब हाय रे काल की करालता ! उनकी आदर्श माता की मृत्यु हो गई। भारत से दो वर्ष बाद वे दक्षिण अफ्रीका गये। अफ्रीका में वे सुप्रीम कोर्ट के एड्वोकेट बने और वहाँ उन्होंने 'नेटाल काग्रेस' का संगठन किया।

१८६६ में उन्होंने बोअर के युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की और फिर १६०१ में भारत आकर कलकत्ता काँग्रेस में शामिल हुये। एक वर्ष बाद वे भारत से पुनः अफ्रीका चले गये। अफ्रीका में गाँधी जी ने बड़े-बड़े कष्ट सहे और बड़े-बड़े काम किये। वहाँ की दासता को मिटाने के लिये उन्होंने महान अहिंसात्मक सत्याग्रह किये। अफ्रीका में गाँधी जी की क्रांति महान ऐतिहासिक क्रान्ति है।

उनका वहाँ का जीवन और प्रयोग सेवा, त्याग, सत्य और परोपकार का प्रयोग है। उन्होंने जुलू विद्रोह में घायलों की सेवा की, महामारी में पड़े हुए प्राणियों को अपने प्राणों को संकट में डाल कर बचाया। और भी अपने सच्चरित्र एवं सद्कर्मों से जो श्रेष्ठ इतिहास गाँधी जी ने विदेशों में स्थापित किया, पठनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

अफ्रीका में अपने गौरवशाली चरण चिन्ह छोड़ १६१५ में गाँधी जी भारत आये। बस यहीं से गाँधी जी की जिन्दगी भारत की बदलती हुई किस्मत की

जिन्दगी है । भारत भ्रमण, चम्पारन सत्याग्रह, गिरमिटया कानून रद्द, असहयोग आन्दोलन, चौरी चौरा कांड, उपवास तथा छः वर्षों की सजा जैसी कितनी ही घटनाएँ और गतियाँ गाँधी जी ने बसन्त के फूलों की तरह धरती पर छोड़ीं ।

गाँधी जी जहाँ कांग्रेस के अध्यक्ष, कुशल राजनीतिज्ञ तथा महात्मा थे, वहाँ वे एक कलाकार भी थे 'हरिजन', 'इण्डियन ओपीनियन' आदि पत्रों का उन्होंने सम्पादन किया, संगीत का स्वाद भजनों के द्वारा चखा और चखाया । 'आत्म-कथा' 'बहिनों से' आदि कितनी ही पुस्तकें उन्होंने लिखीं । यही क्या, गाँधी जी साहित्यकार से एक ऐसे व्यापक तेज बन गये जिससे साहित्य जगत में गाँधी युग और गाँधीवाद की नई गंगा बह चली ।

गाँधी जी महात्मा, नेता और यदि अतिशयोक्ति न मानी जाये तो अवतारों के गुणों से भी सम्पन्न थे । वे भारत माता की बेड़ियाँ काटने के लिये आये थे, वे दलित का उद्धार करने के लिये अवतीर्ण हुये थे, वे दानव को मानव बनाने के लिये बोले थे, उन्होंने अपना काम किया और चले गये ।

वे गये पर स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रतिज्ञा पूरी करके, वे गये पर नमक कानून तोड़ कर, वे गये पर ऐसे ही जैसे डांडी यात्रा करते हुये चले जा रहे हों ।

सन् १९४१ में वे व्यक्तिगत सत्याग्रह के रूप में "एकला चलो रे" की उक्ति चरितार्थ करते चले जा रहे थे, १९४२ में समष्टि में व्यष्टि बन कर चले और १९४७ में वे जेल से छूट स्वाधीन होकर भारत के आँगन में ऐसे ही जगमगाये जैसे बनों से लौटकर राम अयोध्या में सुशोभित हुये थे । किन्तु

धन्य हैं गाँधी जी ! उन्होंने राष्ट्रपति पद के सिंहासन को सुशोभित नहीं किया, अपितु साधु की कुटिया को प्रकाशमान किया।

जय हो साधु संत की जो तिल-तिल कर जलता हुआ जग को प्रकाश देता रहा। दूसरों के लिये गाँधी जी ने क्या नहीं किया। जेल में उनकी परम प्रिय पत्नी कस्तूरबा उनको अकेला छोड़कर मृत्यु की इच्छा-पूर्ति के लिये चली गई। उनका श्वास-श्वास देश के लिये दीपक की तरह जलता रहा। मानव-कल्याण के लिये वे प्रत्येक क्षण अग्नि-परीक्षा देते रहे।

गाँधी जी के जीवन की कहानी का हर अक्षर अमृत से भरा हुआ है। उनके जीवन का इतिहास उनके प्रयोगों का इतिहास है। उन्होंने हर उजाले को अँधेरे की गहराई से देखा था। वे पापी से नहीं, पाप से बचते थे।

बापू ने भेद भाव को मिटाने के लिये आवाज बुलन्द की, अपने प्राणों की बाजी लगाकर हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक् होने से रोका, हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिये भगीरथ यत्न करते रहे और अन्त में इसी वेदी पर वे अपने प्राण न्यौछावर कर गये।

हम हर दिशा और हर विषय पर गाँधी जी के विचार पाते हैं। स्त्रियों पर, स्वास्थ्य पर, साहित्य पर, संगीत पर, ग्रामों पर, गो सेवा पर, आध्यात्मिकता पर, सभी पर गाँधी जी ने श्रेष्ठ विचार दिये हैं। उनकी वाणी ज्योति देने वाली ज्वलित दीपशिखा है।

गाँधी जी ने मनुष्य से कहा—"स्वावलम्बी बनो, अपने उपयोग की वस्तुओं का उपार्जन अपने हाथों से करो, पराश्रित रहना पाप है।"

सेवा ही धर्म है। अहिंसा हृदय का सर्वोत्तम गुण है। चर्खा अहिंसा का प्रतीक है। करोड़ों के एक साथ काम करने में जो शक्ति पैदा होती है उसका सामना कोई और शक्ति नहीं कर सकती। मैं अछूत प्रथा को हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक मानता हूँ।

सबसे पहला पाठ जो हमें सीखना चाहिये वह है खुद की मदद और स्वाश्रय। हृदय में शुद्ध प्रेम हो जाये तो और सब तो उसके साथ अपने आप आ जाते हैं।

"विद्यार्थियों को विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये।"

यह हैं गाँधी वाणी का कुछ प्रसाद। इस बूंद के पूरे सिन्धु में नहाना चाहते हो तो उनके पद-चिह्नों पर चलो। गाँधी जी कथनी के नहीं करनी के महात्मा हैं।

उन्होंने जो कहा वही किया भी। गाँधी जी हमें मनुष्य के हर रूप में दर्शन देते हैं। चर्खा कातते हुये, कपड़ा बुनते हुये, बोझा ढोते हुये, वे हमें दिखाई देते हैं।

गरीब की आँखों में, कलाकार की तूलिका में, भक्तों के भजन और दलितों की पुकार में गाँधी जी के दर्शन होते हैं।

यदि गाँधी जी न आते तो आज सारा संसार नाश को प्राप्त हो गया होता। मुसोलिनी, हिटलर, तोजो की तरह हर इन्सान खूनी बना तोप के मुँह पर दिखलाई देता। हिंसा की धधकती हुई ज्वाला सबको जला डालती।

उनमें आकर्षण था, तभी तो खूनी काल में स्वतन्त्रता ने आकर उनके चरण चूम लिये। सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य आज गाँधी जी के चरणों का ही प्रसाद है।

उनमें आकर्षण था, तभी तो देवताओं को भी उनकी चाह हुई। उनमें महानता थी, तभी तो देवलोक में भी उनकी आवश्यकता हुई। उनमें तेज था, तभी तो उनके जाते ही धरती पर श्वेत वस्त्रधारी हतकान्ति से हो गये।

हे देवलोक! अब तू धरती के सामने कभी गर्व से सर न उठा सकेगा, धरा ने तुझे गाँधी को देकर धरती को दिये हुये तेरे सारे दान फीके कर दिये।

बापू ने
किसी को धूप में देखा कि तन की तान दी छाया।
धरा को प्यास में देखा कि उसने नीर बरसाया॥

किन्तु ऐसे साधु को भी पापी विज्ञान की वह अन्धी पिस्तौल खा गई जो 'गोडसे' के हाथ में आकर चली। हाय! पुजारी ने ही देवता को मार डाला।



योगिराज अरविन्द

वे धरती के बसन्त और स्वर्ग के विराम थे। उनमें तरुण बसन्त के फूल और परिणत बसन्त के फल थे। वे मर्त्य और स्वर्ग के संगम थे। उनकी आँखों में तप का तेज था और समाधियों का सत्य, वे प्रखर प्रकाश की तरह प्रकट थे और अद्भुत रस की तरह विलीन हो गये। उनसे इस पार की तपस्या थी और उस पार का प्रसाद। वे हुए, रहे और समा गये, पर सदा हैं! वे शाश्वत योगी थे, शाश्वत योगी!

अरविन्द का जन्म १५ अगस्त सन् १८७२ को कलकत्ता में हुआ था और १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ था मानो उस दिन इस दिन के जन्म का बीज फूटा था। इनके पिता का नाम डाक्टर कृष्णधन था। कृष्णधन जी पश्चिमी सभ्यता के प्रेमी और नई दुनिया के प्रतिष्ठित महानुभाव थे। बंगाल की राष्ट्रीय जागृति में आपका बड़ा हाथ था।

श्री अरविन्द की प्रारम्भिक शिक्षा दार्जिलिंग में हुई थी किन्तु पिता ने अपने होनहार प्यारे पुत्र को सात वर्ष की आयु में ही शिक्षा के लिये विलायत भेज दिया था। वहाँ आपने लन्दन और केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। अठारह वर्ष की आयु में ही आपने आई० सी० एस० की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया, किन्तु घुड़सवारी की परीक्षा में अनुपस्थित रहने के कारण अरविन्द को सरकारी नौकरी से वंचित रहना पड़ा, या यह कहो कि दासता की जंजीरें आपका शरीर न छू सकीं।

अरविन्द लेटिन, ग्रीक, फ्रेंच, संस्कृत और अंग्रेजी के प्रखर विद्वान थे। बंगला तो आपके संस्कारों की भाषा थी ही, फिर आप पढ़ कर कथित भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित हो गये थे। आप भारत आकर तेरह वर्ष तक बड़ौदा में प्राध्यापक एवं वाइस प्रिंसिपल के पद पर योग्यता से अध्यापन करते रहे। कालिज में आपकी विद्वत्ता से बड़े-बड़े विद्वान चमत्कृत हो उठते थे।

पर अरविन्द तो संसार को प्रकाशमान करने के लिए आये थे, वे किसी कालिज की दीवारों में कैद होकर कैसे बैठ सकते थे। भारतमाता के हाथों में गुलामी की जंजीरें उन्हें झंझोड़ रही थीं, आजादी की आग उनके हृदय में रह-रह कर धधक रही थी। पर वह आग जलते हुये दीपक की लौ की तरह थी, उनमें चक्कर काटती हुई लपटों का पागलपन नहीं था, वे शान्त थे शान्त !

शान्त जब छटपटाने लगता है तो क्रांति का जन्म होता है। अरविन्द में से क्रांति की चिनगारियाँ धीरे-धीरे फूट रही थीं। गुप्त रूप से वे बंगाल के राजनीतिक आन्दोलन में सुलगते जा रहे थे। भारत के कठोर वाइसराय लार्डन कर्जन ने बंगाल को दो भागों में बाँटने के लिए तलवार चलाई तो बंगाल

ही नहीं सारे देश में घाव चीस उठा। बंगाली तिलमिलाने लगे।

आजादी के लिए आन्दोलन जाग उठा। विदेशी वस्त्रों की होली, स्थान स्थान पर धरना, जहाँ-तहाँ सरकारी मशीनों को तोड़ना-फोड़ना, यहाँ तक कि जहाजों को भी फूकना शुरू कर दिया और उधर अंग्रेजों का दमन-चक्र चलने लगा। वे अँधी आँधी की तरह जो भी सामने आता उसी को बाँधते और जेल में डाल देते। देशभक्तों को तनिक सी भी बात पर फाँसी पर चढ़ा देते थे। यद्यपि अरविन्द का आन्दोलन के उग्र रूप में कोई प्रत्यक्ष अथवा क्रियात्मक हाथ नहीं था किन्तु उनको भी अंग्रेजों के दमन का शिकार बनना पड़ा।

अंग्रेजों और बंगालियों में गहरी छन गई। इधर बलिदान के लिए मस्तक थे और उधर काटने के लिए नंगी तलवारें। बंगालियों का नारा था कि प्राण दे देंगे पर बंग भंग नहीं होने देंगे। यह राष्ट्रीयता की ऐसी लहर थी कि जो चोट खाई हुई साँपिन की तरह लहराती हुई बढ़ती जा रही थी। अरविन्द भी मौन न रहे। प्रिंसिपल पद से त्याग पत्र दे दिया और लोकमान्य तिलक के साथ आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। बाल, लाल और पाल की आवाज के साथ अरविन्द की पवित्रता भी फैलती चली गई।

अरविन्द ने राष्ट्रीयता की आवाज बुलन्द करने के लिए, स्वदेशी आन्दोलन को फैलाने के लिए 'वन्दे मातरम्' और 'युगान्तर' नामक पत्रों को जन्म दिया, उनका सम्पादन बड़ी निडरता से किया और थोड़े से समय में ही जनता की आवाज राष्ट्रीय एकता की आवाज में बदल गई।

सन् १९०७ में मुजफ्फरपुर में बम फेंके जाने के अभियोग में सरकार ने अरविन्द को भी बन्दी बना लिया, पर मुकदमें में आप निर्दोष सिद्ध हुए। एक वर्ष तक वह मुकदमा चला था और एक वर्ष तक वे विचाराधीन बन्दी

के रूप में जेल में रहे। जेल में रहते हुए अरविन्द को साधना का सुनहरी अवसर मिला। काल कोठरी के सीखचों में आपने कृष्ण की क्रांति प्राप्त की। हम कह सकते हैं कि उनको काराग्रह में ही बोध हुआ।

जेल से मुक्त होने पर अरविन्द ने देखा कि उनके कार्यकर्त्ता साथी तितर-बितर हो गये हैं। उन्होंने एक बार फिर संगठन किया, पर वे साथी न मिले जो जेल में बन्दी थे, सूली पर चढ़ गये थे और काले पानी चले गये थे। निराश होकर अरविन्द ने अपनी दिशा बदल ली। वे राजनीतिक नेता से बदल योग सिद्धि के लिए निकल पड़े।

सन् १९१० में वे कलकत्ता से चन्द्रनगर आये और चन्द्रनगर से पांडिचेरी पहुंच योग साधना में लीन हो गये, यहाँ से आपकी आध्यात्मिक जिन्दगी शुरू होती है। दक्षिण समुद्रतट पर स्थित पाँडिचेरी के एक स्वच्छ भाग में अरविन्द १९१० से बराबर तपस्या करते रहे। पाँडिचेरी आश्रम के मध्य में अरविन्द की शिष्या एक फ्रांसिसी महिला की कुटी है। यह कुटी सर्वप्रकारेण उपयोगी है जिसमें पुस्तकालय तथा अन्य सभी प्रकार की आध्यात्मिक वस्तुयें उपलब्ध हैं। अरविन्द की शिष्या उनके आश्रम की सबसे पवित्र सेविका है। उनको माता जी कहा जाता है। तपस्या काल में अरविन्द ने बहुत सा साहित्य सृजन किया। अरविन्द आश्रम की सारी देख-भाल योगिराज की इच्छा से माता जी ही करती हैं। अरविन्द आश्रम ऋषि आश्रम की तरह आनन्दप्रद है। उसमें सुगन्धित फूलों से लहलहाता हुआ बाग है। गुलाब, गेंदे और बेले से सुन्दरता और सुगन्ध झरती रहती है। सागभाजी और फल भी उस आश्रम में बहार देते हैं। गऊएँ उस आश्रम में ऐसे ही रहती हैं जैसे कृष्ण के साथ रहती थीं। साहित्य, संगीत और कला का उस आश्रम में सुन्दर संगम है। आश्रमवासी अपने आश्रम पर पूर्ण रूप से आत्म-निर्भर हैं। वे सब साधु रूप से रहते हैं। वहाँ सब साधक भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक रूप में रहते हैं। आश्रम का वातावरण बड़ा गम्भीर और शान्त है।

"संसार के कल्याण का केवल एक ही मार्ग है और वह यह है कि भारतीय महात्माओं, ऋषियों और अवतारों के चलाये हुये मार्ग पर चलें। केवल इसी धर्म द्वारा भौतिक विज्ञान, जड़वाद और बौद्धिक तत्व ज्ञान की कल्पनाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है। भारत का अस्तित्व संकीर्णता के लिए, विश्व सेवा के लिए है।"

देशवासियों के लिए अरविन्द ने कहा—"सर्वप्रथम भारतीय बनो, अपने पूर्वजों की उज्ज्वल ज्योति प्राप्त करो, आर्य विचार, आर्य जीवन तथा आर्य संस्कृति को अपनाओ, यह सब आत्मा से होगा, सत्कर्म से होगा। समाज के लिए किया हुआ कर्म श्रेष्ठ कर्म है, राष्ट्रहित उसमें भी श्रेष्ठ है। अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर मानव सेवा में लग जाओ।"

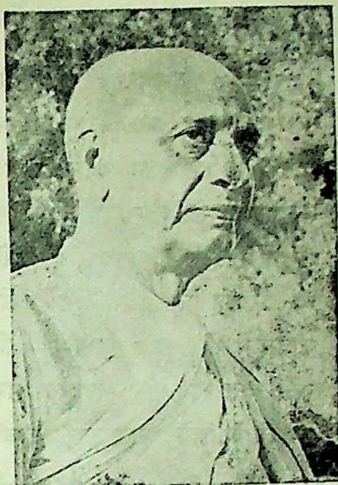
कहते हैं कि योगिराज ने आजादी मिलने से पूर्व महात्मा गाँधी को लिखा था कि जो कुछ अंग्रेज इस समय दे रहे है वह ले लो, ईश्वर की आवाज हुई है कि इस समय इससे अधिक मिलने वाला नहीं है और इसको खोना भारत के हित में नहीं होगा।

योगिराज के बहुत से चमत्कार भी सुने जाते हैं। उनके दर्शन करने वाले कहते हैं कि योगिराज के चारों ओर प्रखर प्रकाश दिखाई देता था। वे दूर से ही मनुष्य के प्रश्न को पहचान लेते थे। उनके पास मनुष्य जो इच्छा लेकर जाता था वह उसकी पूरी हो जाती थी और जिसकी इच्छा ईश्वर विरुद्ध होती थी, उसे वे दर्शन करने वालों की पंक्ति से पृथक् करा देते थे।

पर मृत्युलोक की लीला बड़ी विचित्र होती है। दृश्य को अदृश्य होना यहाँ का क्रम रहा है। एक दिन योगिराज अरविन्द ने ऐसी समाधि ली कि आज तक नहीं बोले। पता नहीं किस दिन उनका चिर मौन मुखर होगा।

काल की गति बड़ी विचित्र होती है, मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती।

साधना हारी, मरण से योग भी हारा।
यह तुझे क्या हो गया यमराज की रानी ?
पी गई भर घूंट आत्मा, सिन्धु का पानी ॥
हा धरा कि दृष्टि का अरविन्द भी तोड़ा।
योग का दिनमान भी तूने नहीं छोड़ा ॥
मृत्यु की ही बीन है इतिहास की धारा।
साधना हारी, मरण से योग भी हारा ॥



सरदार पटेल

वे फूल से कोमल थे और वज्र से कठोर। उनकी आँखों में विलक्षण तेज था, उनकी वाणी में महाशक्ति की हुंकार थी, उनके पैरों में पवन-सी गति थी, उनकी प्रतिभा में सरस्वती का निवास था। वे एक सच्चे साधु थे और कुशल नीतिकार।

विशाल वक्ष, चौड़ा माथा, बड़ी-बड़ी आँखों का ध्यान आते ही सरदार का चित्र सामने आ जाता है। उनके भाल पर लहराती हुई त्रिवली त्रिगुणात्मक त्रिवेणी-सी धारवन्ती थी। उनके उन्नत ललाट से नीति बरसती थी, विशाल वक्ष से दृढ़ता झलकती थी, बड़ी-बड़ी आँखों से क्रांति के अंगारे निकलते थे।

सरदार का जन्म सन् १८७५ में 'करमसद' गुजरात में हुआ था। उनके पिता का नाम झवेरभाई पटेल था। सरदार के पिता बड़े वीर और देशभक्त

थे। १८५७ के गदर में वे झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की सेना में अंग्रेजों से लड़े थे। सरदार की माता वीराँगना और धर्मपरायण थीं। वे चर्खा कातती थीं। घर का काम करती थीं और ईश्वर-पूजा में प्रसन्न रहती थीं। सरदार का शैशव माता और पिता की पवित्र गोद में फला-फूला। विद्यार्थी जीवन में, सरदार शांत और गम्भीर रहते थे। चपलता भी आप में कम न थी, पर वह ऐसे ही थी जैसे मर्यादा में समुद्र। विचार स्वातन्त्र्य आपका उस जीवन में भी था। अध्यापकों की अनुचित बात आप से सहन न होती थी। गलत बात का आप जोरदार विरोध करते थे। एक अध्यापक तो आपको चिढ़ाने के लिये "महापुरुष" कहकर पुकारने लगा था।

पर उसकी यह वाणी वरदान के रूप में हो गई। सच है कि गुरु का वाक्य ब्रह्म वाक्य होता है। बचपन का वह विरोध, विद्यार्थी जीवन की वह दृढ़ता सरदार में जीवन के अन्तिम क्षण तक रही। वे अन्त तक अन्याय का विरोध करते रहे और सदा उनका माथा उठा रहा। वे मिट सकते थे पर झुक नहीं सकते थे। सरदार लोहे के इन्सान थे।

सरदार बड़े अध्ययनशील थे, स्वाध्याय से उन्हें बहुत प्रेम था। जब आप विलायत बैरिस्टरी पास करने गये तो वहाँ एक पुस्तकालय उनके निवास से ११ मील दूर था। आप प्रतिदिन वहाँ जाते और पुस्तकालय खुलने से बन्द होने तक बराबर पढ़ते रहते थे। विलायत से प्रथम श्रेणी में बैरिस्टरी पास कर आप भारत लौटे। भारत आकर सरदार ने कुछ दिन तो वकालत की और फिर देश की परतन्त्रता एवं दयनीय दशा देख भारत सेवा के लिए कार्यक्षेत्र में उत्तर पड़े।

सरदार पर गांधी जी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे सदा-सदा के लिये उनके भक्त हो गये। बापू में कुछ ऐसा आकर्षण था कि वे जिसकी ओर देखते

थे, वही उनका हो जाता था। सरदार गांधी जी के रास्तों पर चलने लगे। दीन-हीन किसानों का उद्धार करने के लिये उन्होंने कमर कस ली। यह अन्याय है कि कड़ी धूप में तप-तप कर संसार का पालन-पोषण करने वाला भगवान भूखा रहे। वर्षा और आँधी में अन्न उपजाने वाले, वस्त्र-हीन होकर जाड़ों में ठिठरते रहें! देश में धन पैदा करने वाले ऊँचे-ऊँचे महल बनाने वाले चूते हुए छप्परों व सड़कों पर पड़े रहें! सरदार से यह सब नहीं देखा गया और जैसे भी उनसे बन पड़ा वे किसानों की मदद करने लगे। आपने गुजरात में सरकारी अफ़सरों द्वारा ली जाने वाली बेगार को बन्द करवाया।

सरदार ने दस लाख रुपया इकट्ठा कर गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। 'रौलट-ऐक्ट' के विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला विरोध किया। सत्याग्रह के समय आपने बुलन्द आवाज में कहा—"भाइयो! बैशाख जेठ की गर्मी के बिना आषाढ़ सावन में वर्षा नहीं होती। भला फिर बिना यातनाएँ सहे स्वतन्त्रता का आनन्द कैसे मिल सकता है? विदेशी सरकार तो साँप की काँचली के समान है, हम इसे बात की बात में अपने ऊपर से उतार सकते हैं। जब रक्षक ही भक्षक हो जाये तो वह हमारा क्या लगता है? हमें उसे मिट्टी में मिलाने के लिये कमर कस लेनी चाहिये।"

सन् १९२८ के बारडोली सत्याग्रह से ही आपको सरदार कहा जाता है। जब सन् १९२७ में बम्बई सरकार के किसानों पर नया बन्दोबस्त कर २२ प्रति सैंकड़ा बढ़ा दिया तो किसानों के सरदार वल्लभभाई पटेल ने किसानों को लेकर विरोध में सत्याग्रह कर दिया। किसानों को चुनौती दे दी कि एक पाई भी लगान की न दी जायेगी। यदि सरकार में शक्ति है तो वसूल कर ले। सरदार की चुनौती से सरकार बौखला उठी। सरकार किसानों को सताने

लगी। वह विचारों को डराती, धमकाती, मारती-पीटती और उनकी स्त्रियों का अपमान करती। यही नहीं, उनकी भूमि का हरण करती और उनको हवालातों में बन्द कर देती। किन्तु दमन से आग और धधकती चली गई। सत्याग्रह जोर पकड़ता चला गया। सरदार वल्लभ भाई पटेल वहाँ दुर्ग की दृढ़ दीवारों की तरह खड़े हो गये, यहाँ तक कि अफसरों का गाँवों में जाना तक मुश्किल हो गया। सरकार तंग आ गई। ऐसा हो गया मानों बारडौली में सरकार का नहीं सरदार का राज्य है। हार कर सरकार झुकी और उसने सरदार से समझौता किया। किसानों की जब्त की हुई भूमि वापिस की गई, बन्दियों को छोड़ा गया, पटवारियों को बहाल कर दिया। किसान सरदार की जय-जय पुकारने लगे। गुजरात के किसान सरदार के ऐसे पुजारी हुए कि जो सरदार का इशारा होता था वही गुजरात के किसान करते थे।

सन् १९३१ में कराँची कांग्रेस के सरदार सभापति थे। वह समय बड़े संकट का था। भगतसिंह को फांसी, हिन्दू मुस्लिम दंगे, सत्याग्रह की प्रतिक्रिया आदि उस समय अग्नि-सी बनी हुई थी पर सरदार ने बड़े साहस और ज्ञान से परिस्थितियों पर काबू किया।

सरदार लौह पुरुष थे, सरकार उस वीर योद्धा से कांपती थी—

भारत वल्लभ भाग्य सितारे।
इधर तुम्हारी वाणी हिलती, उधर कांप जाते हत्यारे॥

वे आग थे, जल थे और पवन थे। उनमें देश को स्वाधीन करने की अद्भुत क्षमता थी। वे जब बोलते थे तो इङ्गलैंड के धुरन्धर योद्धा चर्चिल तक की चोंच बन्द हो जाती थी। सरदार का सबसे बड़ा गुण था निडरता। सत्य कहते हुए वे भय नहीं खाते थे।

हमारे सरदार की एक-एक बात निराली है। जनता का जैसा विश्वास उन पर था ऐसा इस युग के किसी दूसरे नेता पर नहीं रहा। वे भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान प्रतीक थे। उनके प्राणों में देशभक्ति की प्रखर ज्योति जलती थी। उनके जीवन का श्वास-श्वास भारत माता की आरती में लगा हुआ था।

सरदार जैसे तपस्वियों के तप से ही भारत १५ अगस्त १९४७ में अंग्रेजों के पंजों से मुक्त हुआ। आजाद भारत को सरदार ने जो गौरव और शक्ति दी है वह देश को स्वाधीन करने से भी अधिक महान् है।

देश स्वतन्त्र हुआ किन्तु वह कितने ही टुकड़ों में बंटा हुआ था। भारत में जितनी भी रियासतें थीं, वे सब स्वतन्त्र थीं। ये छः सौ से अधिक स्वतन्त्र राज्य भारत के लिये अभिशाप थे। भारत की ये स्वतन्त्र रियासतें यदि रहतीं तो भारत की आजादी हर पग पर खतरे में थी। सरदार बड़ी बुद्धि और नीति से बिखरी हुई रियासतों को एक झण्डे के नीचे लाये। उन्होंने राजतन्त्र को मिटाकर लोकतन्त्र की स्थापना की। पाकिस्तान और अंग्रेजों की कुटिलता से जूनागढ़ और हैदराबाद जैसी रियासतों ने सर उठाया, पर सरदार पटेल ने पलक मारते ही जूनागढ़ और हैदराबाद के होश ठण्डे कर दिये। हमारे नीति निपुण वीर गृह मन्त्री ने बहकने वाली तलवारों को काट डाला।

ये रियासतें जो इतिहास में आज तक आपस में तलवारें खनखनाती रही हैं सरदार की नीति से एक सूत्र में बंध गईं। रियासतों की समस्या को सुलझाने में सरदार का ऐतिहासिक महत्व है। भारत में इतने बड़े साम्राज्य की स्थापना शताब्दियों बाद सरदार के साहस के बल पर ही हो सकी है। रजवाड़े को जनराज्य में बदलकर सरदार ने भारत की दुनिया ही बदल दी।

सरदार के सामने शत्रु सूखे पत्ते की तरह काँपते थे। काश्मीर जब मंझधार में था तो हमारे सन्तरण ने उसे अपने कन्धों से किनारे पर पहुँचाया।

जब पाकिस्तान ने अधिक सर उठाया तो सरदार ने गर्जना की कि "काश्मीर में ही क्या, फिर लाहौर में ही आकर लड़ लो।"

सरदार की हुँकार से सोये शेर जाग कर उनके साथ हो लेते थे। सरदार को समय की वड़ी विलक्षण पहचान थी। पर उनमें विशेषता यह थी कि जनता से नेतृत्व न लेकर जनता को नेतृत्व देते थे। सरदार ने भारत की स्थिति को पहचानते हुए जो विशेष वाक्य कहा वह बहुत ही उपयोगी है। उन्होंने कहा—"इस देश को शत्रुओं से इतना भय नहीं जितना दोस्तों से है।'

भारत के गृह मन्त्री एवं उप प्रधान मन्त्री रहते हुए सरदार ने आशातीत सफलता से शासन किया। सरदार बल्लभ भाई पटेल का शासन प्रबन्ध बड़ा ही कुशल था। बहुतों के मतानुसार तो सरदार इस युग के चाणक्य थे। सरदार भारत के सच्चे सरदार थे।

पर हाय ! मृत्यु से मनुष्य हार जाता है। काल की करालता ने सरदार को हम से छीन लिया। आजादी के अनेकों तारों में आज वह सूरज हमारे सामने नहीं है। यदि सरदार होते तो भारत की भव्यता को दिन-प्रति-दिन चार चाँद लगते रहते।

भारतीय इतिहास के महापुरुषों में सरदार वल्लभ भाई पटेल का नाम चिरस्मरणीय है। स्वतन्त्र भारत सदा सरदार के गीत गाता रहेगा। सरदार मर कर भी इतिहास में सदा अमर हैं।

तुम भी सरदार बन सकते हो पर तभी जब सरदार के चरित्र पर चलो ! प्रतिज्ञा करो कि हम अपने तन, मन, धन से देश की सेवा करेंगे ?

सरोजिनी नायडू

उसमें विलक्षण प्रतिभा थी और कोयल जैसी कूक ! वह राष्ट्र की चेतना थी और काव्य की कुसुमांजलि । इनकी वाणी और शरीर में भारत माता की आत्मा गाती थी । काव्य की कोमलता और राजनीति की कर्कशता में काँटों भरे फूलों पर वे हँसती हुई चलती थीं । संघर्षों से जूझना सरोजिनी के चरित्र में रमा हुआ था । स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में नायडू का स्थान महत्वपूर्ण है । भारत की आधुनिक वीर नारियों में सरोजिनी का स्थान महान् है । वे राष्ट्रीयता के लिये जीवन भर कर्म करती रहीं ।

सरोजिनी नायडू का जन्म १३ फरवरी सन् १८७९ को हैदराबाद दक्षिण में हुआ था । इनके पिता डाक्टर अघोरनाथ चट्टोपाध्याय का बंगाली ब्राह्मण समाज में आदरणीय स्थान था । अघोरनाथ जी ने निजाम कालिज की स्थापना की थी और बाद में उसी कालिज के प्रिंसिपल हो गये थे । चट्टोपाध्याय जी बहुत बड़े विद्वान् और वैज्ञानिक अन्वेषक थे । आप अंग्रेजी, बंगाली, हिब्रू,

फ्रेंच, जर्मन, ग्रीक, संस्कृत और उर्दू आदि द अनेक भाषाओं के पंडित थे। इनकी माता श्रीमती वरद सुन्दरी देवी भी अत्यन्त विदुषी थी। वर्दा सुन्दरी मुलावस्था में बंगाली भाषा में कवितायें किया ा करती थीं। कहने का अर्थ यह है कि सरोजिनी के जीवन पर माता-पिता के चरित्र की गहरी छाप थी। साहित्यिक प्रतिभा और सामाजिक चेतना ा सरोजिनी को माता-पिता से दोनों ही आधार रूप में मिली थी। सरोजिनी जब ११ वर्ष की थी तभी से वह कविता लिखने लगी थी। बारह वर्ष की छोटी आयु में ही मद्रास विश्व-विद्यालय से मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की। १३ वर्ष की आयु में १३०० पंक्तियों की एक लम्बी कविता रच डाली। जिसका नाम उन्होंने "झील की रानी" रखा। इसके बाद नायडू ने एक धारावाहिक नाटक लिखा। इस प्रकार विद्यार्थी जीवन में ही सरोजिनी में अद्भुत बुद्धि और अनोखी काव्य-प्रतिभा देखने को मिलती है।

सरोजिनी की विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित होकर हैदराबाद के निजाम ने उन्हें विशेष अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया और ४२००० रुपया प्रति वर्ष की छात्रवृत्ति देने की घोषणा की। इंगलैंड जाकर सरोजिनी ने लन्दन के किंग्स् कालिज और केम्ब्रिज के गिर्टन कालिज में अध्ययन किया। इंगलैंड में सरोजिनी ने केवल अध्ययन ही नहीं किया, अपितु अपनी कविता शक्ति का प्रसार भी किया। वे वहाँ प्रसिद्ध विद्वान एडमंड गोस, विलियम आर्चर और हैनीमेन जैसे प्रकाशकों से मिलीं और उनके प्रोत्साहन से कितनी ही उत्कृष्ट कवितायें लिखीं। श्रीमती सरोजिनी नायडू के अंग्रेजी में कई कविता-संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें "दी गोल्डन थ्रेशोल्ड" "बर्ड आफ टाइम", "दि ब्रोकन विंग" पुस्तकों के नाम उल्लेखनीय हैं। सरोजिनी की कविताओं में भारतीय जीवन की अंतश्चेतना झलकती है। १८९८ में नायडू भारत आईं और इनका विवाह हैदराबाद के प्रधान मैडिकल अफ़सर डाक्टर गोविन्द राजुलु नायडू से

हुआ। डाक्टर नायडू ब्राह्मण नहीं थे। पर सरोजिनी जैसी प्रगतिशील नारी के लिए यह बात बाधक नहीं बन सकी। इनका दाम्पत्य जीवन बहुत सुखी रहा। कुछ दिन बाद सरोजिनी से एक पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

पर सरोजिनी नायडू संसार में केवल दाम्पत्य जीवन बिताने के लिये नहीं आई थीं। समय की पुकार से वे जाग उठीं। भारत माता की दुःख भरी आवाज से वे क्रांति-क्रांति चिल्लाती हुई चल पड़ीं। उस समय श्री गोखले के नेतृत्व में कांग्रेस के द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम की योजनायें चल रही थीं। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी उनकी अनुगामिनी बनीं और राजनीति की कठोर आँधियों में न बुझने वाली दीपशिखा की तरह जलती रहीं। कांग्रेस में शामिल होकर उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया और देशभक्ति के लिए द्वार-द्वार पर जन-जन को जगाती फिरीं।

सरोजिनी नायडू के हृदय में आजादी की प्रचण्ड आग थी। सन् १९१९ में जब जलियांवाले बाग में अंग्रेजों द्वारा निहत्थों की हत्यायें हुई तो सरोजिनी नायडू लंदन में अपनी बीमारी का इलाज करा रही थीं। उस अस्वस्थ दशा में भी इस घटना से इनको गहरी चोट लगी। इन्होंने "डायरशाही" के विरुद्ध घोर आंदोलन किया और गाँधी जी को लिखा कि 'पंजाब हत्याकाण्ड की आग देश की आजादी से ही बुझ सकती है। डॉक्टर लोग कहते हैं कि मुझे हृदय का रोग हो गया है और वह काफी बढ़ गया है, पर मेरा दुखता हृदय तब तक शांति नहीं पा सकता जब तक मैं भारत की करुण कहानी सुनाकर सारे संसार के हृदय को हिला न दूँगी।"

सरोजिनी नायडू में कार्य करने की अद्‌भुत क्षमता थी। वे बिजली सी भारतीय रंगमंच पर एक दम चमक उठीं। सन् १९२४ में सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रतिनिधि होकर दक्षिण अफ्रीका गईं। सन् १९२६

में वे कानपुर कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षा निर्वाचित हुई। सन् १९२८ में उन्होंने कनाडा में भारतीय दृष्टिकोण का प्रचार किया।

और फिर महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी के पश्चात् भारत की ये वीरांगना सत्याग्रह संग्राम में कूद पड़ीं, एवं २३ मई सन् १९३० को बन्दी बना ली गई। सन् १९३१ में गोलमेज परिषद् की सदस्या बन कर लंदन गईं। कहने का अर्थ यह है कि हर कदम पर सरोजिनी ने तूफान की तेजी की तरह काम किया।

जब सन् १९४२ ई० में आजादी का तूफान उठा तो सरोजिनी सूरज की प्रचण्ड किरण की तरह आन्दोलन को चमकाती चली गई। अंग्रेजों के सामने वे इस प्रकार प्रखरता से दमकती रहीं, जिस प्रकार आँधी और पानी में भी प्रेम की ज्योति कौंधती रहती है। आजादी के इस संग्राम में वे सन् १९४५ तक कारागृह में बन्द रहीं और फिर अस्वस्थता के कारण जेल से छोड़ी गईं।

पन्द्रह अगस्त सन् १९४७ में जब भारत आजाद हुआ तब इन वीर वृद्धा के कन्धों पर उत्तर प्रदेश का शासन भार डाला गया। इस बड़े प्रान्त की गवर्नर रह कर श्रीमती नायडू ने ऐतिहासिक महत्व के कार्य किये।

सरोजिनी नायडू अक्सर कहा करती थीं कि मैं उस जाति की वंशजा हूँ, जिसकी माताओं के समक्ष सीता की पवित्रता, सावित्री के साहस और दमयन्ती के विश्वास का आदर्श है। सचमुच सरोजिनी शक्ति, साहस और क्रांति की प्रतिमा थीं। भारतीय आदर्श नारियों में उनका ऐतिहासिक गौरव है। उनमें संगीत भी था और काव्य भी, वे कोमल भी थीं और कठोर भी। स्वभाव से वे बड़ी हँसमुख थीं। उनकी हास्य प्रवृत्ति का एक छोटा सा रूप देखिये।

एक बार बैठक में गाँधी जी चादर ओढ़े बैठे थे और बैठक के समाप्त होने पर गाँधी जी वहाँ बैठे ही रह गये और सरोजिनी नायडू बाहर आईं तो पत्रकारों ने पूछा—"ये समाने कौन बैठी हैं ?"

सरोजिनी नायडू ने गम्भीरता से पत्रकारों की ओर देखते हुए कहा—"ये गाँधी जी की बेवा हैं।"

पत्रकारों ने अपने कागजों पर लिखा, पर दूसरे ही क्षण उन्हें होश आया कि गाँधी जी तो जीवित हैं, फिर उनकी बेवा कहाँ से आई। पत्रकारों ने हँसते हुए सरोजिनी नायडू की ओर देखते हुए कहा, "जरा सुनिये तो, सुनिये तो।" पर सरोजिनी मुस्कराती हुई चली गईं।

इस प्रकार अपने तप से जीवन भर देश को मुस्कान देती हुई सरोजिनी नायडू २ मार्च सन् १९४९ को संसार से विदा हो गईं। जीवन भर काँटों में फूल की तरह खिलती हुई सरोजिनी आज संसार में नहीं हैं, किन्तु उनके जीवन के इतिहास की सुगन्ध से स्वतन्त्र भारत युगों तक सुरक्षित रहेगा। भारत की बेटियाँ यदि हों तो ऐसी हों जैसी श्रीमती सरोजिनी नायडू थीं।



देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद

निराकार की आरसी साधु की ही देह।
लखा जो चाहे लखन को उस ही में लखि लेह ॥

गांढ़े की ऊँची धोती, खादी का मोटा सा कुर्ता और सर पर गाँधी टोपी लगाये उस देशभक्त का दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता था मानो तपती हुई धूप में खेत पर हल चलाता हुआ कोई किसान हो। ऐसे ही साधु पुरुष की परिभाषा तुलसीदास ने अपनी वाणी से इस प्रकार की है—

साधु चरित शुभ चरित कपासू।
निरस विषद गुणमय फल जासू ॥

ऐसे साधु का जन्म ३ दिसम्बर सन् १८८४ को बिहार प्रान्त के सारण जिले के जीरादेई नामक ग्राम के एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम मुन्शी महादेव सहाय था पर राजेन्द्र को अपने पिता की गोद एवं छाया का सौभाग्य अधिक प्राप्त नहीं हुआ। वे राजेन्द्र को अपने बड़े पुत्र महेन्द्र प्रसाद की गोद में छोड़ इस संसार से विदा हो गये। पिता के बाद राजेन्द्र का पालन-पोषण उनके बड़े भाई महेन्द्र जी ने ही किया।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार राजेन्द्र प्रसाद बचपन से ही होनहार थे। पढ़ने में बहुत तेज थे। कक्षा में सदा ही प्रथम रहते थे, कारण यदि आपको दसवीं की परीक्षा देनी होती थी तो बारहवीं तक की पुस्तकें पढ़ जाते थे और यदि बी० ए० की परीक्षा देनी होती थी तो एम० ए० की पुस्तकें पढ़ते थे।

इस प्रकार हमारे भारत के होनहार विद्यार्थी सन् १९०२ में एन्ट्रेंस परीक्षा में बंगाल यूनीवर्सिटी में प्रथम आये और फिर इन्टर में सबसे आगे निकले तथा ऐसे ही गौरव से बी० ए० और एम० ए० पास किया। बार-बार सरकार ने राजेन्द्र बाबू को छात्रवृत्ति दी।

अध्ययन के बाद बाबू जी मुजफ्फरपुर कालिज में अध्यापक हुए। कुछ दिन बाद वकालत करने के विचार से कलकत्ता चले गये। बंगाल में उन दिनों स्वदेशी आन्दोलन तेजी से चल रहा था। बाबू जी गये तो थे मुकदमेबाजों की वकालत करने, पर पहुँच गये सच्चों की पुकार पर। ऐसे ही जैसे कोई नास्तिक मन्दिर में आ पहुँचे। राजेन्द्र बाबू ने वकालत का ध्यान छोड़ दिया और स्वदेशी आन्दोलन में लग गए। लगन और प्रतिभा से काम करने के कारण बाबू जी वहाँ चमक उठे।

वह ऐसा समय था जब राजेन्द्र प्रसाद जी के सामने कठोर दुविधा थी। एक ओर परिवार का प्रश्न था और दूसरी ओर भारत माता की मुक्ति का सवाल उन्हें बेचैन कर रहा था। एक ओर सारे भारत की पुकार थी और दूसरी ओर उनके बड़े भाई उनको बुला रहे थे। बड़े भाई का बुलाना भी ठीक ही था क्योंकि घर का सारा बोझ वे बेचारे अकेले ही कब तक और कैसे उठाते राजेन्द्र बाबू के सामने बड़ी दुविधा दी। अन्ततोगत्वा बहुत सोच समझ कर राजेन्द्र प्रसाद जी ने बड़े भाई को निम्नांकित पत्र लिखा—

'भैया ! एक भावुक व्यक्ति होने के कारण मैं आपके सामने बैठकर बातें करने में असमर्थ हूँ। मेरा हृदय देश सेवा के लिए विकल है। मैं मानता हूँ कि आपको परिवार के पालन में कठिनाई है किन्तु मेरा आप से नम्र निवदन है कि तीस करोड़ भारतवासियों के लिए आप मेरा त्याग करदें। आप मेरी तनिक भी चिन्ता न करें, क्योंकि मैंने अपना रहन-सहन इतना सादा बना लिया है कि मैं प्रत्येक दशा में प्रसन्न रह सकता हूँ। धन नाशवान है और इसकी तृष्णा का कोई अन्त नहीं। सच्चा सुख संतोष में ही है। संसार में प्रायः दरिद्र लोगों ने ही बड़े काम किये हैं। धनवानों को तो अपने भोगविलासों से ही अवकाश नही। अतः हमें दरिद्रता को घृणा न कर उसे अपनाना चाहिये। अन्त में मैं आप पर यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि संसार में मेरी एकमात्र इच्छा भारत माता की सेवा करना ही है।"

बाबू जी के इस पत्र में उनके चरित्र का पूरा प्रतिबिम्ब है। उन्होंने भारत माता की सेवा को अपने जीने का उद्देश्य बना लिया। लोक सेवा उनका धर्म बन गया। कलकत्ता में महात्मा गोखले जैसों से बाबू जी का परिचय हुआ।

इस प्रकार बाबू जी के हृदय में दिन प्रतिदिन देशभक्ति की ज्योति प्रज्वलित होने लगी और धीरे-धीरे उनका सामाजिक जीवन उन्नति की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा।

पर बापू जी का वास्तविक राष्ट्रीय जीवन चम्पारन सत्याग्रह से शुरू होता है। सन् १९१७ में महात्मा गाँधी जब चम्पारन जिले में निलोहे गोरों के विरुद्ध किसानों की सहायतार्थ आन्दोलन में बन्दी बना लिये गये तो राजेन्द्र बाबू के हृदय में ज्वलन्त क्रान्ति जाग उठी। वे भी गोरों के खिलाफ युद्धक्षेत्र में उतर पड़े। चम्पारन सत्याग्रह के अवसर पर ही गाँधी जी से बाबू जी की प्रथम भेंट हुई थी और तभी से ये गाँधी जी के चरणों के अनुयायी हो गये। बाबू जी ने बापू की आवाज में आवाज मिलाकर सरकार के विरुद्ध जनता में गहरा असंतोष फैलाया। राजेन्द्र बाबू जी की आवाज से सरकार के पैर हिलने लगे और उन्होंने बाबू जी को बार-बार जेल की कोठरियों में बन्द किया पर लोहे की हथकड़ियों से हृदय या उत्साह नहीं बंधा करता। बाबू जी अपने कर्त्तव्य पर हिमालय की तरह अडिग रहे। उन्होंने तकलीफें उठाई पर तूफानों से मुँह न मोड़ा। कठिन से कठिन काम करने के लिए आप हर समय तैयार रहते थे।

बाबू जी के कार्यों की तालिका बहुत लम्बी है। रौलट एक्ट का विरोध, साइमन कमीशन का बहिष्कार, सन् १९३० के सत्याग्रह में जेल यात्रा तथा हिन्दी सेवा, साहित्य सेवा, समाज सेवा जैसी कितनी ही सेवाओं से देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद का जीवन दमक रहा है।

कांग्रेस के संगठन और विकास में राजेन्द्र प्रसाद जी का बहुत बड़ा हाथ है। जब कभी काँग्रेस की नैया डगमगाई तभी आपने पतवार संभाली। सन्

१९४७ में जब आचार्य कृपलानी ने कांग्रेस के सभापति पद से त्यागपत्र दे दिया तो यह भार फिर राजेन्द्र प्रसाद जी के कन्धों पर ही पड़ा। नेहरू सरकार में आप खाद्य मन्त्री रहे और अन्न की भयानक समस्या को बड़ी बुद्धिमानी से सुलझाया।

भारत का हर सवाल हल करने में इस महापुरुष का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद को सुशोभित कर इन्होंने मानों उसी दिन हिन्दी को वरदान दे दिया कि हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा होगी।

कांग्रेस के सभापति पद पर बैठ बाबू जी ने आजादी की लड़ाई को इस वेग से बढ़ाया कि समुद्र पार अंग्रेजों की कैद में बन्दिनी भारतमाता की बेड़ियाँ झनझना कर टूट गईं। १५ अगस्त १९४७ को 'माँ' आजाद हो गई। अब भारत में अपना राज्य हुआ। किन्तु देश को स्वाधीन करना उतना कठिन नहीं था जितना कठिन देश को स्वतन्त्रता की रक्षा और टूटे-फूटे राष्ट्र को बनाना था। स्वतन्त्रता की रक्षा और राष्ट्र के निर्माण में बाबू जी का महत्वपूर्ण स्थान रहा।

जब २६ जनवरी सन् १९५० में भारत में सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना हुई तो देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति पद पर विराजमान हुए। नये भारत में नये विधान और पुराने किन्तु नये राष्ट्रपति के दर्शन कर जन-जन की कामना सफल हुई। दो बार राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने के बाद मई १९६२ में वे इस उच्च पद से हट गये। २८ फरवरी १९६३ को सदाकत आश्रम पटना में उनका निधन हो गया।

कौन जानता है कि आज का बालक कल राष्ट्रपति हो सकता है! कौन कह सकता है कि गाँव का एक सरल किसान दूसरे दिन सारे भारत का

हृदय सम्राट् भी हो सकता है। क्यों नहीं हो सकता ? हर मनुष्य यदि चाहे तो महान् से महानतर और महानतर से महानतम बन सकता है। तुम भी राष्ट्रपति बन सकते हो, तुम भी देशरत्न की उपाधि पा सकते हो, पर तभी जब पहले अपनी परीक्षा दे लोगे। राजेन्द्र प्रसाद जी के जीवन से उनकी अग्नि-परीक्षा का प्रसाद मिलता है। आओ तुम भी देश के लिये तप करो, हो सकता है कि कल राष्ट्रपति के पद पर तुम को ही सुशोभित होने का सौभाग्य मिले।



सर्वपल्ली राधाकृष्णन

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कोई बड़ा नाविक मेरी नौका को असंख्य तूफानों और चट्टानों के बीच से खे कर ले जा रहा है।

मुझे जो सफलतायें मिली हैं वे ईश्वर की दया से मिली हैं पर जो असफलतायें मिली हैं उनका दोषी ईश्वर नहीं है, मेरी असफलतायें मेरी भूलों और दुर्बलताओं के कारण हैं।

सत्य चमड़े की आँखों से परे अन्तर की आँखों का विषय है।

यशस्वी दार्शनिक सर्वपल्ली राधाकृष्णन हमारे देश के ही नहीं विश्व के माने हुए दर्शन विशेषज्ञ हैं। जो महान् होते हैं उनका जीवन चरित्र भी महान् होता है। राधाकृष्णन का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। इनके पिता बहुत कम वेतन पाते थे, पर एक गरीब पिता को ऐसे अमीर पुत्र की प्राप्ति हुई जिसके सामने सैंकड़ों राज्य भी तुच्छ हैं।

जिस दार्शनिक की ज्योति पर आज भारत को गर्व है वह ५ सितम्बर सन् १८८८ को मद्रास के उत्तर पश्चिम में लगभग ४० मील की दूरी पर स्थित 'तिरुत्तनी' नामक स्थान पर अवतीर्ण हुई थी। धन्य है वह तैलगु ब्राह्मण वर्ग जिसमें राधाकृष्णन ने जन्म लिया। शिशु अवस्था में राधाकृष्णन इतने सुन्दर और प्रिय थे कि पास पड़ोसिनें बच्चे के खिलाने के लिये उत्सुक रहती थीं। यदि यह कहें कि इनकी सुन्दरता गोपियों में कृष्ण जैसी थी तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

पढ़ने में ये बाल्यकाल से ही तेज थे। वूरहीज कालेज, वैलोर और मद्रास क्रिश्चियन कालेज में यह अपने सहपाठियों में सदैव आगे रहते थे। दर्शन विषय में आपने एम० ए० पास किया और फिर एम० ए० के बाद प्रेसीडेंसी कालेज, मद्रास में प्राध्यापक हुए। बस यहीं से आपकी ख्याति शुरू हो गई।

इसके बाद मैसूर यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक रहे। वहाँ इन्होंने "रवीन्द्रनाथ टैगोर का दर्शन" (The Philosophy of Ravindra Nath Tagore) तथा "आधुनिक दर्शन शास्त्र में धर्म का स्थान" (The Reign of Religion in contempoary Philosophy) नामक दो पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों से इनकी दार्शनिक जगत में खूब प्रसिद्धि फैली। इन पुस्तकों में राधाकृष्णन के दार्शनिक ज्ञान का चमत्कारपूर्ण चित्रण है।

राधाकृष्णन कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी प्राध्यापक रहे। वहाँ इन्होंने भारतीय दर्शन (Indian Philosophy) की रचना की। यह पुस्तक वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता, जैन, बौद्ध धर्म ग्रन्थों के विवेचनात्मक अध्ययन के आधार पर लिखी गई। इस पुस्तक में एक प्रकार से भारतीय आध्यात्मिक दार्शनिक और धर्म ग्रंथों का निचोड़ है।

राधाकृष्णन के बढ़ते हुए यश को देख कर मैन्चेस्टर कालेज आक्सफोर्ड में उनको व्याख्यानों के लिए बुलाया गया है। वहाँ उन्होंने 'जीवन के प्रति हिन्दुओं

का दृष्टिकोण' विषय पर व्याख्यान दिये। इनके ये भाषण इतने सारगर्भित थे कि इनकी मानवृद्धि को चार चांद लगाने लगे। विदेशों में इनकी कीर्ति फैलती गई और ये दर्शन के प्रकाण्ड पंडित माने जाने लगे।

इनके विचारों की इनकी मौलिक पुस्तक "जीवन का आदर्शवादी दृष्टिकोण" (Idealist View of Life) है। इस मौलिक पुस्तक में जीवन के प्रति उनके अपने जीवन की आदर्श अनुभूतियाँ हैं। अध्ययन, ज्ञान और अनुभूति के आधार पर इस पुस्तक में हमारे दार्शनिक विशेषज्ञ ने जीवन के रास्ते निर्धारित किये हैं।

इस प्रकार दार्शनिक साहित्य के ये यशस्वी रचयिता विदेश से लौटने पर आंध्र विश्वविद्यालय के उप-कुलपति नियुक्त हुए। माननीय मदनमोहन मालवीय जी के आग्रह से आपने काशी विश्वविद्यालय में भी उप-कुलपति पद पर अवैतनिक रूप से काम किया। शिक्षा के क्षेत्र में राधाकृष्णन सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली प्रसिद्ध हुए।

सन् १९३१ में राधाकृष्णन राष्ट्र संघ की सांस्कृतिक समिति के सदस्य हुए और कई वर्ष तक इस कुर्सी ने आपको नहीं छोड़ा। हर कदम पर राधाकृष्णन का सामाजिक और दार्शनिक विकास देखने को मिलता है। ब्रिटिश ऐकेडेमी के तत्वावधान में 'मास्टर माइन्ड' नाम की भाषण माला में इन्होंने गौतम बुद्ध पर वक्तव्य दिया। वह भाषण इतना पसन्द किया गया कि इनके भाषण की प्रशंसा में कहा गया—'It was a lecture on a master mind by a master mind.' अर्थात् वह एक पंडित मस्तिष्क पर पंडित मस्तिष्क का भाषण है। यही नहीं, हमारे दार्शनिक विद्वान् ने और भी अनेक पंडितों की संस्थाओं में प्रवचन किये। आपके प्रवचन वेद-वाक्यों की तरह होते थे! जो सुनता था वही इन महापंडित को गुरु मान लेता था। बड़े-बड़े पंडित राधाकृष्णन की वाणी के भौंरे थे।

यूनिवर्सिटी कमीशन के अध्यक्ष पद पर आप कई वर्ष विराजमान रहे। सरस्वती के इन वरद पुत्र पर भारत माँ को अभिमान है। ये जहाँ भी गये वहीं इन्होंने भारत और भारती के गौरव को बढ़ाया। हर ऊँची मीनार पर हम दार्शनिक पंडित राधाकृष्णन का स्वर उसी प्रकार सुनते हैं जिस प्रकार धरती ने विवेकानन्द का स्वर सुना था।

विवेकानन्द के बाद विदेशों में भारतीयता का प्रचार करने वाले श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन ही हैं। राधाकृष्णन ने सोई भारतीय आत्मा में चेतना का नया मन्त्र फूँका और विदेशों में भारतीय संस्कृति एवं धर्म का वह शंख बजाया जो मन्दिरों की आरती की तरह गली-गली में गूँज रहा है।

सन् १९४९ में राधाकृष्णन रूस में हिन्दुस्तान के राजदूत होकर गये। ये पहले भारतीय राजदूत थे जिनसे मिलने में स्टालिन ने अपना गौरव समझा। व्यक्ति वही है जो दूसरे के प्रभाव में बह न जाये। राधाकृष्णन में जो सबसे बड़ा सौंदर्य है वह यह है कि वे भारत की आत्मा हैं। उनके साथ भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषाएं और भारतीय धर्म हमेशा रहते हैं।

भारत जब स्वतन्त्र हुआ और उसका नया विधान बना तो राधाकृष्णन नये भारत के उप-राष्ट्रपति बनाये गये। अब भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति पद पर राधाकृष्णन सुशोभित हैं। ईश्वर करे वे इसी प्रकार, हमारा नेतृत्व करते रहें।

राधाकृष्णन भारतीय दर्शन पर अधिकारी हैं, जैसे उनका जन्म ही दर्शन के पृष्ठों से हुआ है। जब उनकी आँखें खुलीं तो उन्होंने कहा—

"जैसे ही मैंने होश संभाला तो मेरे विश्वास ने मुझसे कहा कि इस दृश्य संसार के पीछे कोई अदृश्य सत्ता है। किसी भी मुश्किल में मेरा यह विश्वास डिगा नहीं।"

उनके इन शब्दों से ईश्वर के प्रति उनकी दृढ़ आस्तिकता प्रकट है। जीवन का विवेचन करते हुए उन्होंने कहा है—

"जीवन कम है और खुशी अनिश्चित है, मृत्यु सभी की होती है, चाहे राजा हो या रंक। वास्तविक ज्ञान स्वयं को पहचानता है। संतोष सबसे बड़ा धन है। समूह की प्रशंसा से एकान्त शान्ति कहीं सुन्दर है।"

इस प्रकार यह वयोवृद्ध ईश्वरीय ज्योति भारतमाता के मन्दिर को जगमगा रही है। भाषाओं के पंडित्य से, दार्शनिक ज्ञान के प्रकाश से, साहित्य के प्रशंसनीय सृजन से और कुशल नेतृत्व से राधाकृष्णन ने भारत जननी की आरती उतारी और उतार रहे हैं। होड़ तो इस बात में है कि हम में से कौन ऐसे दीपक जलायेगा जिनकी ज्योति राधाकृष्णन के दीपकों की ज्योति से अधिक ज्योतिर्मयी होगी।



मौलाना अब्बुल कलाम आजाद

भारत माता के हाथों की हथकड़ियाँ तोड़ने में जहाँ श्री जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और सुभाषचन्द्र बोस जैसे देशभक्तों का नाम गौरव से लिया जाता है वहाँ मौलाना आजाद का नाम भी चिरस्मरणीय है। आजाद वे फूल थे जो हजारों काँटों में खिलते और सुगन्ध देते रहे। आँधियाँ आने पर बड़े-बड़े मजबूत पेड़ उखड़ गये, किन्तु हिन्दू-मुस्लिम सवाल की लाख आँधियाँ चलने पर भी यह दीपक भारत माता के मन्दिर में जलता ही रहा। बड़े-बड़े धुरन्धर पाकिस्तान के राग अलापते हुए पाकिस्तान चले गये पर मौलाना की जबान पर भारत माता की और महात्मा गांधी की जय के नारे ही गूंजते रहे।

मौलाना आजाद का जन्म मुसलमानों के पवित्र तीर्थ-स्थान मक्का में सन् १८८८ में हुआ था। आपका बाल्यकाल और शिक्षा मुस्लिम देशों में ही हुई। काहिरा की अलअजहर यूनिवर्सिटी से आजाद ने धर्मशास्त्र की डिग्री ली।

शिक्षा समाप्त कर आजाद भारत आये और कलकत्ता में रहने लगे। कलकत्ता में आपने 'अलहिलाल' और 'अलबलघ' जैसे क्रांतिकारी अखबार निकाले। सरकार ने इन पत्रों को जब्त भी कर लिया।

किन्तु लाख बन्धन लगाने पर भी लेखनी और वाणी की आवाज नहीं रुका करती। मौलाना के मन में आजादी की आग तेज होने लगी और आजाद आजादी के मैदान में आ गये। धीरे-धीरे इनका काँग्रेस से सम्बन्ध हो गया। महायुद्ध के बाद खिलाफत आन्दोलन के समय में तो काँग्रेस से इनकी शादी हो गई और तब से बराबर इस दुलहन के साथ खट्टे मीठे रस लेते चले आ रहे थे।

आजाद फारसी और उर्दू के विद्वान शायराना तबीयत के थे। आप जब बोलते थे तो जैसे मानो 'गालिब' बोल रहे हैं। मुँह से बात क्या निकलती थी जैसे मानो कोई शेर बरस पड़ा। आजाद साहब मनमौजी सरल सज्जन थे। आप धुन के पक्के और मजाकिया बूढ़े थे।

मौलाना साहब ने देश की आजादी के लिये ईमानदारी से लड़ाइयाँ लड़ीं। आपने गाँधी जी के सच्चे अनुयायी रहकर कितनी ही बार जेल की यातनायें सहीं। खिलाफत आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन आदि में आप वीर सिपाही की भाँति कार्यक्षेत्र में डटे रहे। काँग्रेस के उद्देश्यों और आदर्शों का आपने सच्चाई से पालन किया।

सन् १९४० में काँग्रेस के ५३वें रामगढ़ अधिवेशन पर मौलाना आजाद ने राष्ट्रपति पद को सुशोभित किया। तब से आप सन् १९४६ तक बराबर काँग्रेस के अध्यक्ष पद को जगमगाते रहे। अंग्रेजों से आजादी लेने के समय में आजाद ही काँग्रेस के अध्यक्ष थे। सन् १९४६ में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन के साथ समझौते की बातचीत में आपका महत्वपूर्ण स्थान है। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने कहा है कि "मौलाना भारत के सबसे बड़े तथा सबसे सुलझे हुए देशभक्त हैं।"

शिमला सम्मेलन के अवसर पर लार्ड वैवेल से भारत की आजादी के बारे में बातें करने पं० गोविन्द वल्लभ पंत के साथ आजाद गये थे। उस सम्मेलन में राजनीतिक के दाव-पेंचों से बचकर निकलना आसान नहीं था, लेकिन बुद्धिमान राजनीतिज्ञ आजाद जाल में फंसे बिना वैवेल को मात दे आये। शिमला में आजाद का महत्व देखने लायक था। राष्ट्रीय पक्ष का यह वकील अद्भुत चमत्कार से अंग्रेजों को चौंधियाँ देता था। उस समय सारे भारत का विश्वास आजाद पर था। महात्मा गाँधी तक शिमला में उनकी छाया में थे, या यह कहो कि अपने प्रतिबिम्ब से आजाद को ज्योति दे रहे थे।

अंग्रेजों से बातें करके जब आप बाहर निकले तो पत्रकारों ने पूछा—'क्या रहा ?'

आजाद ने उत्तर दिया—'कोई सूरत नजर नहीं आती, कोई तदबीर बर नहीं आती।'

और फिर हमारे महान् नेताओं के सतत संघर्षों से आजादी आ गयी। आजादी के लाने में मौलाना आजाद का श्वास-श्वास लगा हुआ था। अंग्रेजों ने आपको वर्षों जेल में रक्खा, मुसलमानों ने आप पर ईंट और पत्थर फेंके। शिमला से लौटते समय अलीगढ़ में आपका काले झंडों और कीचड़ से स्वागत हुआ, पर देश की आजादी का यह कमल खिलता ही रहा। जेल में जब ये थे तो इनकी पत्नी का देहान्त हो गया किन्तु आजाद आंसुओं को आँखों में ही पीते हुए आजादी के लिए लड़ते रहे।

मौलाना आजाद के जीवन की कहानी बलिदानों की कहानी है। पाकिस्तान के बहाव में बड़े-बड़े बह गये पर आजाद जहाँ थे वहीं रहे। आजाद हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक मुसलमान थे। उन्होंने हिन्दू मुसलमानों को सचेत करते हुए कहा—'ए हिन्दू मुसलमानों ! अगर आपस में मेल-जोल से रहना न सीखोगे तो नष्ट हो जाओगे।'

आजाद हिन्दुस्तान में भी मौलाना आजाद का ऐतिहासिक महत्व था। आप मृत्यु के समय तक भारत सरकार के शिक्षा मन्त्री थे। शिक्षा के क्षेत्र में आप बूढ़े होते हुए भी जवानी से काम कर रहे थे। आपने योजना बनाई कि दस वर्ष में कोई भी निरक्षर न रहे। बाल शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, उच्च शिक्षा आदि की ओर आपके कदम तेजी से बढ़ रहे थे।

मौलाना आजाद का जीवन केवल राजनीतिक ही नहीं रहा है अपितु धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक भी रहा है। कुरान पर इन्होंने एक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है। इस्लाम के सत्यों के ये सच्चे भक्त थे। समाज सेवा के क्षेत्र में भी ये पीछे नहीं रहे।

भारत की आजादी का इतिहास जब लिखा जायेगा तो उसमें मौलाना आजाद का नाम मोटे-मोटे सुनहरी अक्षरों में लिखा होगा। मातृभूमि के ये पुजारी जीवन भर तप करते रहे। इन्होंने देश के लिये जन्म लिया, स्वतन्त्रता के लिए जीते रहे और भारत की सेवा करते-करते ही मर गये।

२२ फरवरी सन् १९५८ को अमर देशभक्त मौलाना आजाद को मौत ने हमसे छीन लिया, काली रात के तूफान ने हमारा सुनहरी दीपक बुझा दिया। पर दीपक जो प्रकाश धरती पर बिखेर गया है वह सदा रोशनी देता रहेगा, मौत ने अपनी मनमानी कर ली पर मरने वाले की कहानी अमर है।

आज मौत हारी मरने वाले की अमर कहानी।
वह हर दिल में छोड़ गया है खुशबू भरी कहानी।।
टूट खिलौना गया सुगन्धित मिट्टी नहीं मरेगी।
ले मिट्टी का दीप राह पर दुनिया चला करेगी।।



राष्ट्रनायक जवाहरलाल नेहरू

वे जहाँ जाते थे स्वागत में आंखें बिछ जाती थीं। वे बोलते थे तो मौन मुखर हो जाता था। वे जब सिंह गर्जना करते थे तो समुद्र करवटें लेने लगता था। वे चमके तो बिजलियाँ दमक उठीं। वे विश्व में थे और विश्व उनमें था। भूमि के आकाश पर वे शान्ति के शरद् शशि थे। धरा उनसे छोटी रह गई और आकाश उन पर छाया करता रहा।

वे एक ऐसे आकर्षण थे कि सारे संसार की आंखें उनके दर्शन को आकुल रहती थीं। भुवन भर उनके इशारे की प्रतीक्षा में रहता था, विश्व के लिए वे इस युग के विश्वास थे। दुनिया में धधकती हुई आग को बुझाने के लिए वे सावन भादों की तरह बरसते थे, इस इतिहास पुरुष की कहानी का एक-एक

क्षण विलक्षण है। उस निष्काम कर्मयोगी का श्वास-श्वास मानवता के लिये लगा। वे शान्ति के दूत रहे और क्रान्ति के शोले भी थे।

जवाहरलाल नेहरू का जन्म १४ नवम्बर सन् १८८९ को इलाहाबाद में पंडित मोतीलाल नेहरू के घर में हुआ था। इनकी माता का नाम स्वरूप रानी था। इकलौता होने के कारण जवाहर माता और पिता का बहुत लाड्ला था। जवाहरलाल का शैशव और बचपन किसी दिग्विजयी सम्राट के राजकुमार से कम कहीं था।

जवाहर का लालन-पालन बड़ी शान से हुआ, बड़े-बड़े अंग्रेज आपको पढ़ाते थे। बचपन में आपने खेल ही खेल में घोड़े पर चढ़ना और तैरना सीख लिया था। पाँच वर्ष की अवस्था तक जवाहरलाल इतने समझदार हो गये थे मानो कोई पन्द्रह वर्ष का बालक हो। पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक भारत के इस लाल को मिस्टर एफ० टी० ब्रुक्स और महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा आदि अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू पढ़ाते रहे।

सन् १९०५ में पंडित मोतीलाल नेहरू अपने प्यारे पुत्र को विलायत ले गये। वहाँ उन्होंने उसे इंगलैंड के प्रसिद्ध स्कूल 'हैरो' में भर्ती करा दिया। स्कूल से एन्ट्रेंस पास करके जवाहरलाल केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के ट्रिनिटी कालिज में भर्ती हुए। उसी कालिज में स्वर्गीय शेरवानी साहब, डाक्टर किचलू साहब और डाक्टर महमूद आदि भारतीय भी पढ़ते थे। ये भारतीय जवाहरलाल के सहपाठी और सखा रहे। जवाहरलाल ने सन् १९१० में एम० ए० पास करके १९१२ में बैरिस्टरी पास कर ली।

मोतीलाल नेहरू ने बेटे पर खोलकर रुपया खर्च किया। विलायत में रहते हुए जवाहरलाल ने ठाठ की जिन्दगी बिताई। वहाँ के नगरों में खूब घूमे और विद्यालय की शिक्षा के साथ-साथ साधारण ज्ञान में भी वृद्धि की और फिर इंगलैंड से अध्ययन कर जवाहरलाल भारत वापिस आये।

भारत आने पर जवाहरलाल नेहरू का कुमारी कमला से बड़ी धूमधाम के साथ विवाह हुआ। कमला राजकुमारियों की तरह श्रीसम्पन्न और निष्कलंक चन्द्रमा की तरह सुन्दर थी। उसके हृदय में भारतीय गौरव हुंकारता था और रोम-रोम में प्रेम का समुद्र हिलोरें लेता था। थोड़े दिन बाद इस नवदम्पति को एक कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई, वही कन्या इन्दिरा गाँधी के नाम से प्रसिद्ध है, वही कन्या नेहरू परिवार की अखण्ड ज्योति है।

भारत की दशा देख जवाहरलाल जी तड़प उठे मानो विलायत में उन्होंने सब कुछ देखने के साथ-साथ यह भी देखा हो कि यहाँ का वैभव भारत माता की छाती पर खड़ा हुआ है। आपने देश की स्वतन्त्रता के लिये राजसी जीवन से करवट बदली और कांग्रेस से सम्बन्ध जोड़ लिया। श्रीमती डाक्टर ऐनी बीसेन्ट, लोकमान्य तिलक और सरोजनी नायडू के साथ-साथ आप आजादी की जंग में कूद पड़े। ईश्वर की कृपा से आपको राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के चरणों का सहारा मिला।

अंग्रेजों के दमन और काली करतूतों से जवाहरलाल का आवेश अंगारों में बदल गया। अंग्रेजों की नीति के कारण जवाहरलाल का अपने पिता मोतीलाल नेहरू से मतभेद भी हुआ। पर शेर जवाहरलाल पंडित मोतीलाल नेहरू के सामने जबान नहीं खोलते थे।

जवाहरलाल ने १९१९ से १९२१ तक संयुक्त प्रान्त के किसान आन्दोलन में पराक्रम दिखाये। आनन्द भवन का यह राजकुमार दीन किसानों के दुख से दुखी होकर घर से निकल पड़ा। इन्होंने किसानों के साथ किसान बनकर जीवन बिताया। आन्दोलन में, जेल यात्रा में, गोली खाने में, सब स्थानों में जवाहरलाल देशवासियों के साथ रहे।

सन् १९२१ में सरकार ने जवाहरलाल नेहरू को सबसे पहली बार लखनऊ

में बन्दी बनाया और छः महीने की कैद का दण्ड दिया। १९२२ में आप विलायती कपड़ों की दूकान पर धरना देते हुये पकड़े गये। उसके बाद सन् १९३०, '४१, ४२ में न जाने कितनी बार भारत की आजादी के लिये जेल गये। किन्तु किसी बार भी अपनी परीक्षा से मुंह न मोड़ा।

नेहरू जी ने जीवन में बड़े-बड़े काम किये। "हिन्दुस्तानी सेवा दल" की स्थापना की, कई वर्ष तक कांग्रेस के महामन्त्री रहे और सन् १९२९ में ये नर-नाहर लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर विराजे। हाथ में तिरंगा झन्डा, श्वेत अश्व पर सवार, इन्होंने उस अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति की प्रतिज्ञा की।

जवाहरलाल जी जिस काम में जुट जाते थे रात दिन एक कर देते थे। जिधर भी आप जाते थे जनता का समुद्र आपके दर्शनार्थ उमड़ पड़ता था। हर क्षेत्र में जवाहर का अधिकार था। सेवा में, त्याग में, सृजन में पण्डित नेहरू बेजोड़ थे। इन्होंने देश के लिये अपना सर्वस्व त्याग दिया।

गांधी जी के पद-चिन्हों पर चल कर, बार-बार वर्षों की कठोर जेल यातनायें सह कर, यहाँ तक कि जब आपनी पत्नी सख्त बीमार थीं तब भी आप जेल में ही थे और श्वास-श्वास में कर्म करके इस कर्मयोगी ने भारत माता के पैरों की वेड़ियाँ काट डालीं। १५ अगस्त सन् १९४७ को हम स्वतंत्र हुए। स्वतन्त्र होने पर पण्डित नेहरू इस देश के प्रथम प्रधान मन्त्री पद पर सुशोभित हुए। अपने हृदय-सम्राट को जनता ने शासन का सूत्र पकड़ा दिया।

भारत माता के मन्दिर में जिस दिन स्वतन्त्रता की आरती उतरी उस दिन इस वीर पुरुष ने लालकिले पर वह तिरंगा झण्डा फहराया जिस झण्डे के नीचे भारत माँ के कोटि-कोटि वीर पुत्र शहीद हुए थे, जिस झण्डे के लिये सेनानी सुभाष के फूल पता नहीं कौनसी धरती की गोद में खेल रहे हैं। लाल

किले पर आज हमारी आजादी, हमारी भावनाओं और हमारी शान का प्रतीक ध्वज गौरव से लहरा रहा है। यह झण्डा उन हाथों से फहरा जिनके बारे में गाँधी जी ने कहा--"बहादुरी और देश-प्रेम में कोई भी जवाहरलाल से आगे नहीं बढ़ सकता।"

महात्मा गाँधी जवाहरलाल को मोती लाल से भी अधिक प्यार करते थे। जवाहरलाल को राष्ट्र नेता बनाने में गाँधी जी का सबसे बड़ा योग है। उसकी ओर सारे देश की ही नहीं अपितु विश्व भर की आँखें लगी रहती थीं। वे आँधी, पानी और तूफानों में जलने वाले दीपक थे।

भारत के प्रतीक पण्डित जवाहरलाल नेहरू का देश-देश में स्वागत हुआ। अमेरिका में, रूस में, चीन में, इंगलैंड में, हर देश में उन पर हृदय-सुमन चढ़ाये गये। एशिया को जगाने वाला जवाहरलाल एक प्रखर सूर्य था। पिछड़े हुए देशों को बल देने वाला जवाहरलाल एक अद्‌भुत युगपुरुष था। उसने एशिया में वह ज्योति जगा दी जो योरुप की आँधियों से बुझ नहीं सकती। उसके विश्व शान्ति से लिए 'पंचशील' सिद्धान्त, उसकी विदेश नीति, उसका साहित्य, सभी कुछ विश्व के लिये हितकर हैं।

उसने नवीनता की परिभाषा बदल दी, उसने बुढ़ापे को नई जवानी दे दी। वह नई चेतना और नई परिभाषा से आया।

और हाय! २७ मई सन् १९६४ को धरती का वह सूरज डूब गया जिससे रोशनी लेकर हम चलते थे। कराल काल ने उनकी उम्र के पचहत्तर वर्ष नहीं होने दिये, चौहत्तर वर्ष छः महीने तेरह दिन की आयु पूरी कर युग नेता जवाहरलाल नेहरू हम से दूर चले गये। सच है मृत्यु किसी पर दया नहीं करती। धरा बिलखती रही और जवाहरलाल नेहरू को मृत्यु ने उससे छीन लिया।

पर उसकी मृत्यु नहीं हुआ करती जो जन-जन में रम जाता है। जब तक जनता है तब तक जवाहरलाल नेहरू अमर हैं। उनका भौतिक देह चाहे आज संसार में न हो पर उनके संदेश तो सदा रहेंगे। उनके निष्काम कर्मों के दीपक तो जलते रहेंगे।

युग नायक जवाहरलाल नेहरू आज भी गुलाब के फूलों में महकते हैं। मानवता के नक्षत्रों में दिखाई देते हैं। क्या बालक चाचा नेहरू को कभी भूल सकेंगे ? क्या भारत माता अपने उस सपूत पर सदा गर्व नहीं करेगी ? जवाहरलाल जी मर कर भी अमर हैं। संसार उनकी वीरता और प्रेम का सदा आदर करता रहेगा।



सन्त विनोबा भावे

सन्त विनोबा साबरमती आश्रम के सबसे पहले सदस्य हैं। विनोबा कौन हैं, यह बताते हुए गांधी जी ने अपने हरिजन सेवक में लिखा था—"मेरे हिन्दुस्तान लौटने पर सन् १९१६ में विनोबा ने कालिज छोड़ा था। वे संस्कृत के पंडित हैं। उन्होंने साबरमती आश्रम में शुरू से ही प्रयोग किया था। आश्रम के सबसे पहले सदस्यों में वे एक हैं। अपने संस्कृत के अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए वे एक वर्ष की छुट्टी लेकर चले गए। एक वर्ष के बाद ठीक उसी घड़ी जबकि उन्होंने आश्रम छोड़ा था, चुपचाप आश्रम में फिर आ पहुँचे। मैं तो भूल ही गया था कि उन्हें उस दिन आश्रम में पहुँचना था। वे आश्रम में सब प्रकार की सेवा-प्रवृत्तियों, रसोई से लगाकर पाखाना सफाई तक में हिस्सा ले चुके हैं। उनकी स्मरण-शक्ति आश्चर्यजनक है। वे स्वभाव से ही अध्ययनशील हैं। समय का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा वे कातने में ही लगाते हैं।

श्री विनोबा ने कताई को दस्तकारी मान कर मूल उद्योग कातना भी लिखी है। उनके हृदय में छुआछूत की गंध तक नहीं है, साम्प्रदायिक एकता में उनका उतना ही विश्वास है जितना मेरा। इस्लाम-धर्म की खूबियों को समझने के लिये उन्होंने कुरान शरीफ का मूल अरबी में अध्ययन किया। उनके पास उनके शिष्यों और कार्यकर्ताओं का ऐसा दल है जो उनके इशारे पर हर तरह का बलिदान करने को तैयार है। वे इतिहास के निष्पक्ष विद्वान हैं। उनका विश्वास है कि सविनय-आज्ञा-भंग के अनुसंधान में भाषणों की अपेक्षा शांत रचनात्मक कार्य कहीं अधिक प्रभावशाली होते हैं।"

गांधी जी के शब्दों में विनोबा जी की व्याख्या पर्याप्त है और अब तो भूमिदान यज्ञ के तपोधन गाँव-गांव में दर्शन दे रहे हैं। ये यात्री मानो वामन अवतार की तरह सम्पूर्ण भूमि को नाप ही लेंगे।

भूमि के इन भगवान् का जन्म ११ सितम्बर सन् १८९५ को गागोदा गांव में हुआ। यह गांव महाराष्ट्र राज्य के कोलाबा जिले की पेण तहसील में है। इनके पिता का नाम श्री नरहर शम्भूराव भावे था और माता का नाम रुक्मणी देवी था। विनोबा का बचपन का नाम विनायक नरहर भावे था। विनोबा नाम तो उनका साबरमती आश्रम में बापू की देन है। विनोबा जी के माता-पिता चितपावन सम्प्रदाय के नियमनिष्ठ ब्राह्मण थे। विनोबा के चरित्र पर उनके माता-पिता के चरित्र का बड़ा प्रभाव पड़ा। इनकी माता जी धर्मनिष्ठा एवं उदार महिला थीं। मां की वाणी का जिक्र करते हुए विनोबा कहा करते हैं—

"विन्या! ज्यादा मत मांग, याद रख थोड़े में गोड़ी (मिठास) और अधिक में लबाड़ी (लवारी)। मनुष्य अगर उत्तम गृहस्थाश्रम करे तो माँ बाप का

उद्धार होता है। पर उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करे तो बयालिस पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। पेट भर अन्न और तन भर वस्त्र—इससे अधिक की आवश्यकता नहीं। देश सेवा की तो उसमें भगवान् की भक्ति आ ही जाती है, फिर भी थोड़ा भजन चाहिए।"

आज सन्त विनोबा के जीवन में माँ की वह अमर वाणी गूंज रही है। विनोबा मुरली के बड़े प्रेमी थे। मुरली के बारे में उनका कहना है—"मुरली हमारा राष्ट्रीय वाद्य है, गरीब से अमीर तक सभी के लिये सुलभ है।"

एक दिन मां ने देखा कि विन्या चूल्हे में कागजों का बंडल जला रहा है। उन्होंने पूछा—"विन्या ! क्या करता है ?"

उत्तर मिला—"आपने स्कूल और कालिज के सर्टिफिकेटों की राख करता हूँ।"

बस विनोबा ने दिखावे के प्रमाण-पत्र फूंक डाले और आत्मा का प्रकाश साथ ले लिया। उन्होंने संस्कृत का गहरा ज्ञान प्राप्त किया। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु अन्तर्ज्योति जगाई।

और फिर जिज्ञासु विनोबा साबरमती आश्रम में गाँधी जी की शरण में चले गये। आश्रम में विनोबा जी का जीवन अनुपम एवं आदर्श है। छः घण्टे तक नियमित शरीर-श्रम करते थे। साढ़े तीन घण्टे रोज पेड़ों में पानी डालते थे। छः महीने तक रसोई बनाने का काम किया। आश्रम में सबसे पहले पाखाना कमाने का काम विनोबा जी ने ही अपने जिम्मे लिया। सेवा और ज्ञान से आश्रमवासी विनोबा जी के भक्त और शिष्य हो गये।

विनोबा जी का एक पत्र पढ़कर गांधी जी के मुँह से निकला था—'गोरख ने मछन्द को हराया ! भीम है भीम !''

विनोबा बड़े विद्वान आचार्य हैं। उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र, शंकर भाष्य, मनुस्मृति, पातंजलि, योगदर्शन आदि आध्यात्मिक ज्ञान के आप गुरु हैं। कथित ज्ञान को देने के लिए विनोबा जी ने कितने ही शिष्यों को अपनी छाया में पढ़ाया है।

विनोबा जी पैदल चलने के बचपन से ही बड़े अभ्यासी हैं। लगभग चार सौ मील पैदल यात्रा करके इस अमर पथिक ने राजगढ़, सिंहगढ़, तोरणगढ़ आदि ऐतिहासिक किले देखे। आज जो भूमिदान यज्ञ के लिए गाव-गाव पैदल भ्रमण कर रहे हैं, वे पैर बहुत पहले से भूमि को नापते चले आ रहे हैं।

विनोबा जी गांधी जी के चरणों पर चले और चले जा रहे हैं। हरिजन सेवा, हिन्दू-मुस्लिम एकता, ग्राम सेवा, जो कुछ भी गांधी जी ने किया वही आपने भी किया।

१८ जून सन् १९२३ को दिये भाषण के कारण विनोबा जी पहली बार कारावास के अतिथि बने। १९३२ में एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए फिर गिरफ्तार कर लिये गये। इस कारावास में श्री जमनालाल जी बजाज, प्यारेलाल जी, पुरुषोत्तमदास जी, गुलजारीलाल जी नन्दा विनोबा जी से कितने ही महत्वपूर्ण प्रश्नों पर बातचीत किया करते थे। एक बार साथियों में से किसी ने कहा—"स्वराज्य के बाद जमीन का क्या हाल होगा ? सब गांव की जमीन तो साहूकार जमींदारों ने दबाई है।"

विनोबा जी ने तुरन्त उत्तर दिया—मैं जमीन के बराबर में एक मर्यादा ठहराऊँगा। हर आदमी के पास जमीन कितनी रह सकती है, यह परिमाण

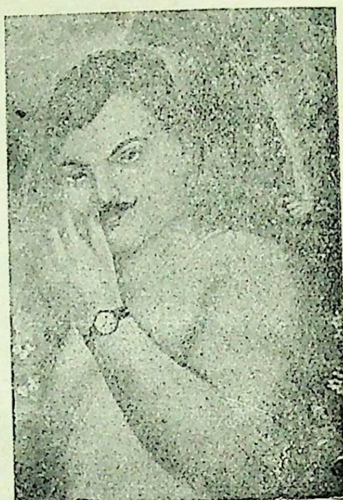
हमें कायम करना होगा। बीस एकड़ या पच्चीस एकड़ से अधिक जिनके पास होंगी वह हम निकाल लेंगे और बे-जमीन वालों को बाँट देंगे।"

धुनिया जेल में विनोबा जी के हृदय में जो समष्टि का दीप जल रहा था वह आज गाँव-गाँव और किसान-किसान को ज्योति दे रहा हैं। भूमिदान यज्ञ की वह भूमि का आज भूमि के भगवान के हाथों फलती-फूलती जा रही है। विनोबा अहिंसा के सच्चे पुजारी एवं महान क्रांतिकारी हैं। सन् १९४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह में आप पहले सत्याग्रही थे। इस सत्याग्रह में उन्हें तीन महीने की सजा हुई, छूटते ही उन्होंने फिर सत्याग्रह किया तो छः महीने की सजा हुई। फिर छूटते ही उन्होंने सत्याग्रह किया तो साल भर की सजा हुई।

इस प्रकार कारावास का दंड भोगते और देश को प्रकाश देते देते विनोबा जी सन् १९४२ के आन्दोलन में फिर गिरफ्तार कर लिये गये। किन्तु मन के मुक्त को किसी पिंजड़े में डाल दो वह मुक्त ही रहता है। विनोबा जी का जेल जीवन भी आदर्श है।

३० जनवरी सन् ४८ को जब बापू विनोबाजी के कंधों पर अपने शेष कार्यों का भार छोड़कर चले गये, तो विनोबा जी ने १०—३—४८ को पहली बार २४ वर्ष बाद राजघाट पर प्रार्थना प्रवचन किया। सन् १९५१ में विनोबा जी ने सर्वोदय का संचालन संभाला।

आज हम महात्मा गाँधी के प्रतीक सन्त विनोबा भावे को गाँव-गाँव पैदल भ्रमण करते देखते हैं। भूमि लेते और भूमिदान देते हुये इस अद्भुत क्रांतिकारी के पैरों में जान पड़ता है सारी जमीन आकर लिपट गई है। व्यष्टि में समष्टि समा गई है। भूदान यज्ञ विश्व में एक महान अहिंसात्मक क्रांति है। यह ऐतिहासिक क्रांति जन-जन के लिए कल्याणकारी है। आओ हम भी विनोबा भावे के साथ पग बढ़ाते चलें।



चन्द्रशेखर आजाद

वह धधकता हुआ पहाड़ था और बहकता हुआ तूफान ! वह दृढ़तर हिमालय था और मृदुलतर रुई, जिसमें आग भरी रहती है। वह गंगा धारा की तरह शीतल और निर्मल था पर लोहे के पिशाचों ने उसे ऐसा तेज बना दिया कि उसकी धार में लोहे को भी काटने वाली तराश आ गई। शान्ति का वह पुजारी क्रांति का अंगारा बन कर धधक उठा।

चन्द्रशेखर आजाद भारतीय स्वतन्त्रता इतिहास के वे वीर पुरुष थे जो जीवन भर धधकती हुई आग में तप करते रहे। आजाद की जिन्दगी उस जलती हुई मोमबत्ती की तरह रही है जो स्वतन्त्रता के उत्सव में झाड़फानूस की चिमनी में गल-गल कर जलती और ज्योति देती है। स्वतन्त्रता देवी के मन्दिर में आजाद की हड्डियाँ अगर की बत्तियाँ बनकर जल रही है।

भारत के वीर शहीद चन्द्रशेखर आजाद का जन्म काशी के कमच्छा भाग में स्थित बैजनाथ मौहल्ले में श्री बैजनाथ शर्मा के घर हुआ था। शर्मा जी

उग्रवादी विचारों के पवित्र पण्डित थे। आजाद की माँ शान्त स्वभाव की गम्भीर देवी थीं। आजाद बपपन से ही गम्भीर थे। वे संस्कृत के होनहार विद्यार्थी रहे। अंग्रेजी का भी उन्हें अच्छा अध्ययन था।

पर गाँधी जी के द्वारा चलाये हुए असहयोग आन्दोलन ने उनके मन को हर लिया। आजाद ने पढ़ने-लिखने को तिलांजलि दे दी और भारत माता की बेड़ियाँ काटने के लिए सत्याग्रही बनकर निकल पड़े। चौदह वर्ष के बालक ने माँ को बन्धनों से मुक्त कराने के लिए कारावास को पवित्र किया। जेल में आजाद को महात्मा गाँधी और भारत माँ की जय बोलने के अपराध में कोड़ों की सजा दी, उनकी नंगी कमर पर जल्लाद तब तक बेंतें मारते रहे जब तक कमर से खून नहीं चूने लगा।

कोड़े खाकर अहिंसा का वीर पुजारी आग का गोला बनकर धधक उठा। उसने प्रतिज्ञा की कि अब ईंट का जवाब पत्थर से दूंगा।

बस फिर क्या था! उसके बाद चन्द्रशेखर आजाद हो गये। न्यायाधीश ने भी जब चन्द्रशेखर से पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? तो उस युवक ने कड़ककर उत्तर दिया—"आजाद?"

न्यायाधीश ने फिर पूछा—"पिता का नाम?"

आजाद ने उत्तर दिया —"आजाद!"

अदालत ने तीसरी बार पूछा—"तुम्हारा निवास स्थान?"

आजाद ने आवेश में कहा—"जेल"।

आजाद के इन उत्तरों से अदालत धधक उठी और उसने आज्ञा दी कि इस दीवाने को पन्द्रह बेंतें और लगाई जाये।

आजाद ने बेतें खालीं, पर फिर फरार हो गये। फरार होकर आजाद बम पार्टी में शामिल हो गये। देश को स्वतन्त्र करने के लिए भारत में संगठित क्रांतिकारी दल जाग उठा। रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खां, सचीन्द्रनाथ

सान्याल जैसे नौजवान सर से कफन बांध कर निकल पड़े। इस दल ने हर सम्भव उपाय से अंग्रेजी सरकार को निकालने के लिए प्रयत्न किये। यह दल बमों, पिस्तौलों और बन्दूकों से पराधीनता समाप्त करना चाहता था। 'काकोरी' की घटना प्रसिद्ध है जिसमें रामप्रसाद बिस्मिल का ऐतिहासिक महत्व है। लोहे का सन्दूक उसने अपनी भुजाओं से तोड़ डाला। इस दल के सकल महा विप्लवी थे। यह दल नये गदर की नींव रख रहा था। आजाद फौज के दल को हम इस दल की प्रतिक्रिया का रूप कह सकते हैं।

"लेकिन जब दीपक ही घर को फूंके कैसे किस्मत फूट न जाये।" दल के ही कुछ कायरों के कारण रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला जैसों को फांसी पर चढ़ना पड़ा। देश के वे दीवाने हँसते-हँसते फांसी के झूलों पर झूल गये। अंग्रेजों के काले इतिहास पर उन वीरों के खून के दाग लगे हुए हैं। स्वतन्त्र भारत के आकाश में इन शहीदों के रक्त की ही लाली है।

दमन से क्राति नहीं दबा करती। निर्दोष का खून जितना बहता है' ज्वाला उतनी ही अधिक धधकती है। फांसी पर चढ़ने वालों की भारत में कमी नहीं। मा के लिये शहीद होने वाले वीर पुत्र, इस वीर भूमि पर आये दिन जन्म लेते रहते हैं। विस्मिल और अशफाक के बाद सुखदेव, भगतसिंह और राजगुरू फांसी पर चढ़े। सतलज की लहरों में आज भी उनकी चिता की राख गर्म है। साइमन कमीशन के पापों का फल अंग्रेजों को भारत छोड़कर भुगतना पड़ा है। लाला लाजपतराय की मौत का प्रतिशोध दीवाने देश भक्तों ने सांडर्स की हत्या करके ले लिया। सांडर्स की हत्या भगतसिंह, राजगुरू और चन्द्रशेखर के द्वारा हुई। भगतसिंह ने सांडर्स के गोली मारी। सांडर्स का नौकर चाननसिंह भगतसिंह को पकड़ने के लिए दौड़ा, पर चन्द्रशेखर ने तुरन्त ही चाननसिंह को गोली का शिकार बना दिया।

सन् १९२९ में वायसराय की गाड़ी पर बम फेंकने के षड्यन्त्र में भी

आजाद प्रधान थे। असेम्बली भवन में बम् फेंकने का षड्यन्त्र भी आजाद द्वारा ही रचा गया था। भगतसिंह और सुखदेव को जेल से छुड़ाने की योजना भी रची पर वह असफल हो गई।

इस प्रकार चन्द्रशेखर आजाद से अंग्रेजी सरकार थर्रा उठी। आजाद अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आजाद थे। अंग्रेज उनको पकड़ने के लिए पागल रहते थे पर पकड़ न सके। सरकार ने आजाद को पकड़ने पर दो हजार, पाँच हजार और सात हजार के इनाम भी रखे पर परिणाम में उसे हाथ ही मलने पड़े।

क्रांतिकारी आजाद के नाम की कण-कण में धूम मच गई, अंग्रेज पुलिस उनको पकड़ने के लिए खाना, पीना, सोना सब भूल गई। आजाद पुलिस के सामने ही पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर गायब हो जाते थे।

एक दिन सुबह पंडित जवाहरलाल नेहरू आनन्द भवन के अपने कमरे में लेटे हुए थे। सहसा उनके कक्ष का द्वार खुला। जवाहरलाल ने देखा कि एक हृष्ट-पुष्ट नौजवान उनके सामने खड़ा है।

उस युवक ने गम्भीरता से कहा—'मेरा नाम चन्द्रशेखर आजाद है, मैंने आज तक जो कुछ भी किया है वह देश की आजादी के लिये किया। मैंने उनका ही खून बहाया है जो भारत की स्वतन्त्रता के शत्रु थे। इस समय मैं पुलिस से चारों ओर से घिरा हुआ हूँ, आप बतायें कि मैं क्या करूँ ?'

जवाहरलाल युवक का मुंह देखते रहे, वे उसे कुछ उत्तर न दे सके। आजाद पाँच मिनट तक उत्तर की प्रतीक्षा कर दरवाजे से बाहर निकल आये।

और उसके दो घण्टे बाद जवाहरलाल ने सुना कि चन्द्रशेखर आजाद अब इस दुनिया में नहीं हैं। अल्फ्रेड पार्क में वे पुलिस की गोलियों का मुकाबला करते हुए वीर गति को प्राप्त हो गए। धन्य है वह शहीद जो जीवन भर आजाद रहा।

हाय ! सन् १९३१ के जनवरी मास का वह दिन जब प्रयाग के अल्फ्रेड पार्क में माँ का वह सपूत वीर आजाद पुलिस से तीन तरफ से घिर गया। आजाद राम-नाम का तहमद बाँधे नंगे बदन थे। उनकी कटि में पिस्तौल बंधा हुआ था। जब बेशुमार पुलिस उनके सामने बन्दूक और पिस्तौल तानकर गोलियाँ चलाने लगी तो आजाद ने अपनी कमर से पिस्तौल निकाला एवं एक पेड़ की आड़ से गोलियों के जवाब में गोली चलाने लगे। उनके माउजर पिस्तौल में बारह गोलियां थीं। उनकी एक-एक गोली का निशाना इतना सही था कि यदि पुलिस पेड़ों की आड़ में न होती तो आजाद की बारह गोलियों से सैंकड़ों की पक्ति मौत के घाट उतर जाती।

पर जब आजाद की पिस्तौल में एक ही गोली रह गई तो उन्होंने कहा-— आजाद आजाद है, वह अंग्रेज की गोली से नहीं मरेगा और फिर अपने मस्तक में अपनी ही गोली मार कर चिर निद्रा में सो गये।

आजाद भारत में सब कुछ है पर भारत की माता की आँखें गीली ही हैं। वह अल्फ्रेड पार्क के फूलों में अपने आजाद को ढूँढ रही हैं। न जाने कब माँ का वह वीर सपूत चिर निद्रा से जागेगा।

आजाद देश में आजाद जैसे शहीदों के ईंट और पत्थरों के ताजमहल चाहे न हों। पर इतिहास का यह अमर शहीद कवियों की वाणी में सदा अमर है। हम आजाद हो गये पर क्या आजाद भी बन सकेंगे।



नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

"तुम मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा !" आजाद हिन्द फौज के अमर सेनानी वीर सुभाष का यह नारा भगवान कृष्ण के पाँचजन्य घोष की तरह गूंजा और आजादी देकर मौन हो गया। स्वतन्त्रता के परवाने की वह आवाज आज भी जीवित है। उस पुजारी के जीवन के इतिहास में आजादी की लड़ाई का अद्‌भुत इतिहास बोलता है। सुभाष में अनोखी शक्ति थी। वह अकेला होकर भी अनेक बन जाता था। उसने अपने जीवन के जालों में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों को उलझा रखा था।

वह दृश्य से अदृश्य और अदृश्य से दृश्य हो जाता था। संसार को चमत्कृत करने वाले इस वीर मृत्युञ्जय का जन्म २३ जनवरी सन् १८९७ में कटक के के सरकारी वकील श्री जानकीनाथ बोस के हुआ था। यह बंगाली बालक बचपन से ही बड़ा बुद्धिमान था। खूब पढ़ता था और तरह-तरह के खेल खेलता था। सुभाष बचपन में बच्चों की टोली बनाकर वीरता का अभिनय करता था। शिक्षा प्राप्त कर बोस ने आई० सी० एस० भी पास कर लिया।

हते हैं आई० सी० एस० की की मौलिक परीक्षा में बोस से पूछा गया कि तुम्हारे सामने जो यह पेड़ खड़ा है उसकी लम्बाई कितनी है ? चालाक बालक ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"बीच से ठीक दुगनी ।"

इस प्रकार यह होनहार बालक बाल्यकाल से ही विलक्षण प्रतिभा का था। आई० सी० एस० पास करने पर बोस चाहते तो कलक्टर और कमिश्नर बन सकते थे। उनको मजिस्ट्रेट पद के लिये नियुक्ति पत्र मिला पर सुभाष ने सबको ठुकरा दिया और देश की सेवा के लिये कमर कस ली।

देश सेवक सरकार की सेवा कैसे कर सकता था ? उस सरकार की जिसने भारत माँ के पैरों में जंजीरें डाल कर कैद कर रखा था, उस सरकार की जो हमारे देश में व्यापारी बन कर आई थी और घर की मालिक बन बैठी। उस सरकार की जिसने सन् सत्तावन में हिन्दुस्तानियों को तोप के मुँह से बाँध-बाँध कर उड़ा दिया। ऐसी सरकार के विरोध में सुभाषचन्द्र अंगारे की तरह धधक उठे।

फिर क्या था, सुभाष सरकार की आँखों में शूल की तरह चुभने लगे। वह बंग केसरी को कुचलने के लिये कठोर दमन पर उतारू हो गई। नौकरशाही ने बोस को बार-बार जेल भेजा, नजरबन्द किया और जुर्माने किये। किन्तु काल कोठरियों में रहकर भी सुभाष का स्वाभिमान न डिगा, वे अपने मार्ग से विचलित न हुए। सरकार ने जितना बोस दबाया वे उतने ही प्रसिद्ध होते चले गये। उनका तेज उतना ही प्रचण्ड होता चला गया।

काँग्रेस में सुभाषचन्द्र बोस का शानदार स्थान था। कलकत्ता काँग्रेस के अधिवेशन पर आप वालिंटियरों के कमान्डर थे अर्थात उनकी सैनिक प्रवृत्ति

प्रारम्भ से ही थी। कांग्रेस में रहते आप अग्रगामी दल के प्रमुख नेता रहे। सन् १९३७ में सुभाष बाबू त्रिपुरा काँग्रेस के सभापति चुने गये, जहाँ कि आपका बावन बैलों के रथ में जुलूस निकाला गया।

इधर सुभाष पर सरकार के अत्याचार हो रहे थे, उधर अपनों ही में विरोध बढ़ रहा था। सुभाष सोच रहे थे कि देश को केवल अहिंसा से आजादी नहीं मिलेगी। अतः उन्होंने कांग्रेस एवं राजनीति से संन्यास ले घर के एक कमरे में आसन जमा लिया।

इस कमरे में सुभाष ऐसे छिपे कि उन्होंने किसी से भी मिलने से इन्कार कर दिया—उन्होंने कहला दिया कि सुभाष अखण्ड पूजा में लगे हैं, वे योगमग्न हैं, पता नहीं कब दर्शन दें।

उस कमरे में साधना करते करते बोस की दाढ़ी बढ़ गई। उनका रूप बिल्कुल बदल गया। सारा देश उनकी इस लीला को आश्चर्य से श्रवण कर रहा था कि एक दिन सारे भारत ने सुना—"बोस अपने कमरे से ग़ायब हो गये।"

इधर बोस ने स्टेशन पर पहुँच पेशावर का टिकट खरीदा और नौ दो ग्यारह हो गये। पेशावर में बोस अफगानी वेश बनाकर उत्तमचन्द नामक एक सौदागर से मिले और उनके पास रहने लगे। पेशावर से सारी खुफिया पुलिस और अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंकते हुए सुभाष बाबू जियाउद्दीन के रूप में इटली होते हुए जर्मनी पहुँचे।

जर्मनी पहुँच सुभाष बाबू ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की। हिटलर से दोस्ती का हाथ मिलाया और फिर हवाई जहाज से जापान आकर आजाद हिन्द फौज के संगठन का काम जोरों से शुरु किया।

सुभाष ने हिन्दुस्तान को ग्राजाद करने के लिये ग्राजाद हिन्द फोज संगठित की। ग्राजाद हिन्द फौज में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी भरती हुए। इस फौज के सिपाही इतने दिलेर थे कि कई कई दिन तक भूखे प्यासे ग्रंग्रेजों से लड़ते रहे। कितनी ही रातें काँटों पर जाग-जाग कर बिता दीं। इस फौज का ग्रभिवादन—"जय हिन्द" था ग्रौर इसके सेनानी थे सुभाषचन्द्र बोस। ग्राजाद हिन्द फौज उन्हें नेताजी कह कर पुकारती थी। ग्राजाद हिन्द फौज का नारा था—"दिल्ली चलो !"

'दिल्ली चलो' के लिये कदम बढ़ाते हुए ग्राजाद हिन्द फौज के वीर सिपाही ग्रागे बढ़े, सीनों में गोलियाँ खाईं, ग्राजादी के रास्ते में ग्राने वाले एक सगे भाई को ग्राजाद हिन्द फौज के एक वीर सिपाही ने गोली से मार दिया। कदम बढ़ते जा रहे थे ग्रौर दिल्ली निकट ग्राती जा रही थी किन्तु दिल्ली चरणों में ग्राकर नेताजी से दूर ही रह गई।

ग्राजाद हिन्द फौज जापान के हारने के साथ साथ हार गई। ग्राजाद हिन्द फौज के वीर सिपाही ग्रंग्रेजों ने बन्दी बना लिये। शाहनवाज, ढिल्लन, प्रेमनाथ ग्रौर कैप्टिन लक्ष्मीबाई जैसों की कहानियों से ग्राजाद हिन्द फौज का इतिहास भरा पड़ा है। ग्राजाद हिन्द फौज का नाम ग्राज भी है, सुभाष न जाने कहाँ हैं ?

जब सुभाष ग्राजाद हिन्द फौज का संगठन कर रहे थे तो बर्मा वालों ने तन, मन, धन से सुभाष की सहायता की थी। ग्रौरतों ने ग्रपने गलों से जेवर उतार-उतार कर सुभाष के चरणों में डाल दिये थे। सुभाष की ग्राजाद हिन्द फौज का झंडा भी वही तिरंगा था जो गाँधी ग्रौर जवाहरलाल के हाथों भारतवर्ष में है। सुभाष ने गांधी सेना, जवाहर सेना ग्रौर झाँसी की लक्ष्मीबाई

की सेना के नाम पर अपनी सेना की टोलियाँ बनाईं। पर दूर ही से भारत को आजादी देकर वे न जाने कहाँ खो गये।

"चलो दिल्ली!" उसके चलाये हुये कदमों से हम दिल्ली आ गये, हिन्दुस्तान आजाद हो गया। १५ अगस्त सन् १९४७ को हमने लाल किले पर झण्डा गाड़ दिया।

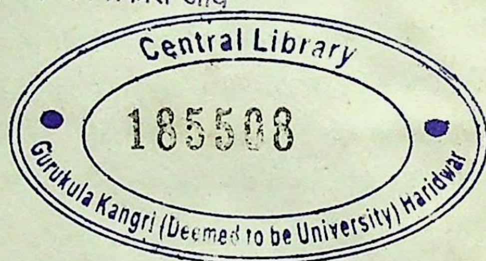
"लाल किले पर आज तिरंगा झण्डा हमने गाड़ दिया है।
अपने सेनानी सुभाष की उम्मीदों को प्यार किया है॥
प्यार किया है भगतसिंह को शेखर का सम्मान किया है।
आज शहीदों की समाधि पर घी का दीपक बाल दिया है॥"

किसी का भी यह समझना कि देश में आजादी के दीपक केवल अहिंसा से जले हैं, यह भूल है। अंग्रेज केवल अहिंसा से डर कर नहीं भागे, वे इतने दयालु भी नहीं हो गये थे कि सोने की चिड़िया उन्होंने यों ही छोड़ दी, बल्कि उन्होंने देखा कि गाँधी जी के चेले यदि शीतल समुद्र हैं तो धधकते हुए पहाड़ भी हैं। आजाद हिन्द फौज जैसी घटनाओं से उनको सेना पर विश्वास नहीं रहा। उनके पैर उखड़ गए, उन्होंने सोचा कि यदि गाँधी जी के नारे के अनुसार भारत नहीं छोड़ा तो कहीं ऐसी आग न धधक उठे कि अंग्रेजों को भारत से सकुशल जाना भी कठिन हो जाये।

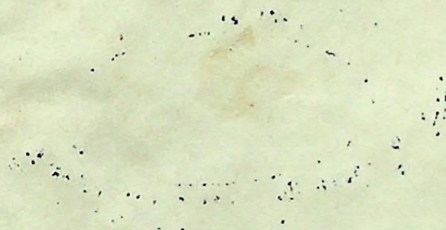
आजादी आई, पर सुभाष न जाने कहाँ छिप गये। कोई कहता है वे हवाई जहाज के गिरने से मर गये। कोई कहता है वे किसी जमींदोज किले में हिटलर के साथ हैं, कोई कहता है वे संसार छोड़ कर किसी गुफा में समाधि लगाये बैठे हैं, किसी का विश्वास है कि वे चीन में हैं. कोई उन्हें रूस में

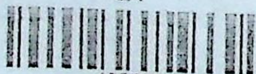
समझता है, किसी के ख्याल से वे जर्मनी में हैं, पर हमारे ख्याल से तो वे जन-जन में हैं, वे निराकार होकर सारी सुनिया में व्याप्त हो गये हैं। सुभाष की मिट्टी जमीन में दबी पड़ी है और उस पर हमारी स्वतन्त्रता के फूल खिल रहे हैं।

वह स्वतन्त्रता का शलभ था पर अब जल कर आजादी का दीपक हो गया है।



जन-
की
खिल
ीपक




097
185508

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

3) सूचना प्रौद्योगिकी

सूचना प्रौद्योगि

परिवर्तन हो रहा है।

मीडिया के चलते आज

इस क्षेत्र में आज भी अ

इंटरनेट का अविष्कार

हं। अन्यतः कम्प्यूटर इं

किसी भी भाषा द्वारा सं

अन्य भारतीय भाषा मे

साफ्टवेअर तैयार किये

वेबसाइट विद्यमान हैं।

तक सीमित है। जब व

अनिवार्य रूप में हिन्दी

और इंटरनेट पर प्रतिष्ठा

अपार संभावनाएँ हैं।

4) विज्ञान तथा तकनी

यह क्षेत्र भी अं

दिया जाता है कि विज्ञा

का ही बोलबाला रहा

नयी-नयी तकनीकी पा

लिए अंग्रेजी ही उपयुक्त

भाषाओं में विज्ञान और

अब इस मानसिकता को

क्षेत्र में उधार का ज्ञान अ

है। हिन्दी फिल्मों की भाषा को लेकर भी
होती थी। हर तरह की भाषा प्रयुक्ति की
भाषा के मानों से तौलने की अतिवादी
ती। नयी माध्यम-विधाओं और उनकी
देखकर उसके विकास में योगदान देना

और हिन्दी :

की में पिछले कुछ वर्षों से क्रांतिकारी
आधुनिक सूचना तंत्र एवं इलेक्ट्रानिक
समूचे विश्व की दूरियाँ सीमट गयी है।
अंग्रेजी का बोलबाला है। कम्प्यूटर और
उन देशों में हुआ, जिनकी भाषा अंग्रेजी
टरनेट की अपनी भाषा है, उसे विश्व की
चालित किया जा सकता है। हिन्दी तथा
कम्प्यूटर प्रयोग के लिए कई तरह के
जा रहे हैं। इंटरनेट पर भी कई हिन्दी
देश में इंटरनेट अभी भी नगरों-महानगरों
ह ग्राम-कस्बों में भी फैल जाएगा तब
तथा अन्य भारतीय भाषा भी कम्प्यूटर
पा सकेगी। इस क्षेत्र में भी हिन्दी की

की और हिन्दी :

जी के कब्जे में हैं। इसके लिए तर्क यह
और तकनीकी क्षेत्र में पाश्चात्य देशों
है। नये-नये वैज्ञानिक अविष्कार और
चात्य देशों से आती है। इसीलिए उसके
त भाषा है। हिन्दी या अन्य भारतीय
तकनीकी शिक्षा संभव ही नहीं। लेकिन
बदलना होगा। विज्ञान तथा तकनीकी
र उधार की भाषा के सहारे हम दूर तक
में विकास के लिए भारतीय भाषा को
यद्यपि 10वीं तथा 12वीं तक की
भारतीय भाषा का प्रयोग किया जाता
लिखी गयी हैं, लेकिन इस दिशा में
फी संभावनाएँ हैं।

अंग्रेजी में। संविधान में अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में प्रयोग के लिए आरंभिक 15 वर्षों तक की अवधि तय की गयी थी। लेकिन अब वह अनंत काल तक प्रयोग की अधिकारी बन गयी है। सरकार, प्रचार सभाओं के प्रयासों के बावजूद हिन्दी को राजभाषा का स्थान अब तक प्राप्त नहीं हो पाया है। एक बहाना हमेशा चलता रहा है कि हिन्दी में कामकाज उतना सहज और सरल नहीं बन पाता। आज कम्प्यूटर का एक नया बहाना मिल गया है। कम्प्यूटर में हिन्दी और देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए कई साफ़्टवेअर बन गये हैं, लेकिन कार्यालयों में उनके प्रयोग से हिन्दी में कामकाज नहीं होता। वैश्वीकरण के इस दौर में व्यापार-व्यवसाय, जनसंचार माध्यमों में हिन्दी एक प्रमुख भाषा बन गयी है, लेकिन कार्यालयों में अंग्रेजी की मानसिकता कम नहीं हुई, बल्कि और अधिक पुष्ट होती जा रही है। अंग्रेजी को अनुवाद की भाषा और हिन्दी अनुवाद की भाषा बन गयी है। अनुवाद भी इस कदर अटपटे कि 'राजभाषा हिन्दी' से तात्पर्य एक अटपटी, बोझिल और कृत्रिम भाषा के रूप में उपहास का विषय बन गयी है। अब हाल यह है कि अंग्रेंज परस्ती में बड़े बाबू यहाँ तक कह रहे हैं - हिन्दी में सब कुछ किया जा सकता है लेकिन राजकाज नहीं हो सकता। एक जनतांत्रिक व्यवस्था में सबसे बुनियादी बात यह है कि राज जवाबदेह हो और राज जवाबदेह किसी और भाषा में नहीं हो सकता, वह तो जनभाषा में ही होगा। जनभाषा की उपेक्षा अपनी जवाबदेही की उपेक्षा है।

6) भारतीय संस्कृति और हिन्दी :

वैश्वीकरण में मात्र पश्चिमी पूँजी का ही नहीं, पश्चिमी संस्कृति का भी विस्तारीकरण हो रहा है। वैश्वीकरण का ... समरूपता का है। हमारा देश विविधता का है। यहाँ भाष... संस्कृति की विविधता में एकता है। इस विविधता में ए... भारतीयता है। इसीलिए कहा जा रहा है कि वैश्वीकरण ... बड़ा खतरा भारतीय संस्कृति को है। पहले आधुनिकता ... पर भारतीय संस्कृति का पाश्च्यातीकरण हुआ अब वैश्व... के नाम पर अमेरिका की उपभोक्तावादी संस्कृति से संस्कारित एक नयी सभ्यता का विकास देखा जा रहा है। संस्कृति सूक्ष्म रूप में मूल्य परक होती है और स्थूल रूप में वह समाज, साहित्य, कला, मनोरंजन और मानवीय संबंधों में व्यक्त होती है। आज ... उपभोक्तावादी संस्कृति के संबंध में डॉ. शंभुनाथ कहते हैं-